मई 1992 तीन रुपये

37, अंक 7 वैसाख-ज्येष्ठ शक 1914

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

फोटो साभार : फोटो प्रभाग, सलमान ज़मीर एवं रमेश कुमार, ग्रामीण विकास मंत्रालय

विषय सूची

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करना आवश्यक — 2
डा॰ विश्वमित्र उपाध्याय

सार्वजनिक वितरण प्रणाली उपभोक्ता संरक्षण का महत्वपूर्ण साधन — 5
डा॰ राकेश अग्रवाल

भारत में सिंचाई सुविधा का विकास — 9
डा॰ गजेन्द्र पन्त सिंह

मुद्दा ग्रामीण महिलाओं के विकास का — 11
प्रभात कुमार सिंघल

मत्स्य पालन उद्योग-एक नई दिशा की ओर — 14
राजेश कुमार गौतम

सार्वजनिक वितरण प्रणाली कितनी सार्थक — 17
सुरेश ढाका

ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने में जवाहर रोजगार योजना की भूमिका — 20
डा॰ निर्मल कुमार

भारत में कृषि आधारित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग — 24
प्रो॰ गोपाल लाल

गांव की देवी — 26
विजय कुमार शर्मा

ग्रामीण बाजारों में "चलती फिरती उपभोक्ता दुकानों" की अपरिहार्यता — 29
ओम प्रकाश तोपनीवाल

मरूभूमि विकास कार्यक्रम-समस्याएं एवं समाधान — 32
डा॰ रूड़मल यादव

भारतीय कृषि स्थिति और सम्भावनाएं — 36
लवलीन

कृषि क्षेत्र में जुड़ी महिलाओं की उपेक्षा क्यों? — 38
शुभकंर बनर्जी

जायद मौसम में अधिक उत्पादन कैसे लें? — 40
डा॰ एस.के. उत्तम
डा॰ यू.डी. अवस्थी

राजस्थान में पीने के पानी की व्यवस्था — 42
कृष्ण कुमार रत्तू

सहकारी आन्दोलन : समग्र विकास की ओर — 44
विपिन कुमार

ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक एजेन्सियां — 47
सुबह सिंह यादव

राजस्थान में शिक्षा प्रसार हेतु नवीन योजना "लोक-जुम्बिश" — 53
अमरचन्द सिंघल

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467 कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। **दूरभाष : 384888**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करना आवश्यक

□ डॉ० विश्वमित्र उपाध्याय □

स्वाधीनता के बाद कृषि, उद्योग तथा शिक्षा के क्षेत्रों में भारत ने काफी प्रगति की है। कृषि क्रांति के फलस्वरूप अब भारत में अनाज का भी काफी उत्पादन होता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के चिंताजनक दबावों के बावजूद भारत के पास अपनी जनता के लिये पर्याप्त अनाज है। अब भारत को पहले की तरह अनाज का आयात नहीं करना पड़ता है परन्तु पर्याप्त अनाज होने के बावजूद हमारे देश के लाखों गरीब लोगों को आज भी दोनों समय भर पेट भोजन नहीं मिल पाता। उन्हें अनाज के अतिरिक्त कपड़ा, केरोसिन तेल, दाल, साबुन, सब्जियां आदि प्रतिदिन काम आने वाली उपभोक्ता सामग्रियों का अभाव सताता रहता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि लाखों लोग बेरोजगार, अर्द्ध बेरोजगार तथा गरीब हैं और उनकी क्रय शक्ति बहुत कम है। दूसरा कारण यह है कि आम उपभोक्ता वस्तुओं के क्रय, विक्रय और सप्लाई पर आज भी मुनाफाखोर तथा जमाखोर खुदरा व्यापारियों का नियंत्रण बना हुआ है। सरकार की अपीलों, निर्देशों, आदेशों तथा कभी-कभी मारे जाने वाले छापों के बावजूद किसानों, खेतमजदूरों, कारीगरों तथा मजदूरों द्वारा अपना पसीना गिराकर पैदा किया गया अनाज और अन्य उपभोक्ता वस्तुयें उन्हें सस्ते मूल्यों पर सुलभ नहीं हो पातीं। ये छोटे-बड़े व्यापारी तथा बिचौलिये उपभोक्ता वस्तुओं का अभाव करते रहते हैं तथा खुला बाजार, मुक्त व्यापार और निजी पहल के उपदेश देने वाले इन बड़े व्यापारियों की जन विरोधी कार्रवाइयों तथा उनकी अति मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति की उपेक्षा करते हैं।

भारत में दशकों से बड़े व्यापारियों की मुनाफाखोरी तथा जमाखोरी की प्रवृत्तियों के विरूद्ध कार्रवाइयां करने और आम जनता को उचित मूल्य पर उपभोक्ता वस्तुओं की सप्लाई करने के प्रयास किये जा रहे हैं। स्वतंत्रता से पूर्व द्वितीय विश्व युद्ध के समय उपभोक्ता वस्तुओं की राशनिंग की गई थी। उस समय भी राशन की दुकानों से गेहूं, चावल, सीमेन्ट, कपड़ा, केरोसिन आदि आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की सप्लाई की जाती थी। स्वाधीनता के बाद केन्द्र तथा विभिन्न राज्य सरकारों ने उपभोक्ताओं को राहत दिलाने तथा उनके हितों की रक्षा के लिए उचित मूल्य की दुकानें खुलवाईं। इन्हें जनता की रोजमर्रा की बोलचाल में राशन की दुकान कहा गया। लगभग पांच दशकों से किसी न किसी रूप में उचित मूल्य की दुकानें चल ही रही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि देश के लाखों गरीब लोगों तथा निम्न मध्यम वर्ग के लोगों को इन दुकानों से कमोबेश उपभोक्ता वस्तुयें मिल रही हैं। यदि उचित मूल्य की दुकानों से मिलने वाली यह थोड़ी-बहुत सुविधा भी समाप्त हो जाय और उपभोक्ताओं को खुले बाजार की कृपा और सदाशयता पर छोड़ दिया जाए तो हाहाकार मच जाएगा।

स्वाधीनता के बाद भी मंहगाई निरन्तर बढ़ती रही और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि के बावजूद जब-तब इनकी कृत्रिम अभाव की परिस्थितियां उत्पन्न की जाती रहीं। संगठित राजनीतिक दलों और उनके जन संगठनों ने महंगाई और उपभोक्ता वस्तुओं के अभाव के विरूद्ध आन्दोलन चलाये। इसके अतिरिक्त इस सदी के छठे और सातवें दशकों में आसमान छूती महंगाई की मार से तिलमिलाते उपभोक्ताओं तथा मध्यम वर्ग के राजनीतिक दृष्टि से सजग बुद्धिजीवियों ने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े नगरों में उपभोक्ता आन्दोलन (कन्ज्यूमर मूवमेन्ट) चलाये। इन आन्दोलनकारियों ने निजी व्यापारिक प्रतिष्ठानों का बहिष्कार करके उपभोक्ताओं की उचित मूल्य की दुकानें, बड़े स्टोर, काफी हाउस आदि खुलवाये। इस उपभोक्ता आन्दोलन का देश पर काफी प्रभाव पड़ा। केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने भी उचित मूल्य की दुकानें, सरकारी भंडार तथा सुपरबाजार आदि खोले। इससे उपभोक्ताओं को कुछ राहत मिली। थोक व खुदरा व्यापारियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। परन्तु दुर्भाग्य से उपभोक्ताओं का यह जन आन्दोलन कुछ वर्षों बाद शक्तिहीन हो गया।

इसके साथ-साथ देश के राजनीतिक चिंतन में परिवर्तन हुआ। इस सदी के सातवें दशक में आम जनता के जीवन को दिन रात प्रभावित करने वाले आर्थिक प्रश्नों के बजाय क्षेत्रीय समस्याओं को तोड़ मरोड़ कर पेश किया जाने लगा। भारत जैसे गरीब देश में खाना, कपड़ा और मकान के प्रश्न ओझल कर दिये गये। निहित स्वार्थी तत्वों ने अपने अपने लाभ के लिये लोगों को गुमराह करना शुरू कर दिया। इन तत्वों द्वारा उत्पन्न किये गये गर्म और चिंताजनक वातावरण में उपभोक्ता आन्दोलन के प्रखर स्वर क्षीण हो गये।

जो हो, जनता की ज्वलंत समस्याओं को सदा के लिए टाला नहीं जा सकता। जब तक जनता उपभोक्ता वस्तुओं की कमी महसूस

करती रहेगी। जब तक मुनाफाखोरी व जमाखोरी की राष्ट्रविरोधी अनियंत्रित प्रवृत्तियां जारी रहेंगी तब तक उपभोक्ता आन्दोलन के उठ खड़े होने की संभावनायें भी बनी रहेंगी। जनता की आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर ही विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपने चुनाव घोषणापत्रों में महंगाई कम करने तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली को व्यापक व मजबूत बनाने का संकल्प किया है। आम चुनावों के बाद बनी नई सरकार ने भी इस प्रश्न पर ध्यान दिया। छह माह तक गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श करने के बाद सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक उपयोगी, विस्तृत, प्रभावी तथा लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से एक योजना बनाई।

प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने 1 जनवरी 1992 को बाड़मेर में इस योजना का शुभारम्भ करते हुए कहा कि आठवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और अधिक व्यापक व उपयोगी बनाया जाएगा। उन्होंने घोषणा की कि देश के दूर दराज के रेगिस्तानी तथा जनजातीय क्षेत्रों में स्थित 1700 ब्लाकों में 11,000 उचित मूल्य की दुकानें खोली जाएंगी और 24 लाख नये राशन कार्ड बनाये जाएंगे। इस योजना के अन्तर्गत 16 करोड़ 10 लाख उपभोक्ताओं को लाभ प्राप्त होगा। प्रधानमंत्री ने यह भी कहा कि सस्ते मूल्य की इन दूकानों से गेहूं, चावल, चीनी, आटा, केरोसिन के अतिरिक्त साबुन, चाय, नमक और दालों की भी सप्लाई करने पर विचार किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि नये राशन कार्ड बनाते समय नकली राशन कार्डों की जांच करके उन्हें रद्द करना आवश्यक है ताकि उपभोक्ता वस्तुओं का दुरूपयोग न हो और वे जरुरतमंद लोगों को ही उपलब्ध हों। श्री पी.वी.नरसिंह राव ने कहा कि गांवों में लगने वाले साप्ताहिक बाजारों में भी सुधार करना चाहिए और उन्हें लघु सुपर बाजारों का रूप दिया जाना चाहिए। प्रधानमंत्री ने यह महत्वपूर्ण घोषणा भी की कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ व व्यापक बनाने की यह नई योजना कोई राहत योजना नहीं है। वास्तव में यह गरीब जनता की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाया गया सामाजिक - आर्थिक कार्यक्रम है। उन्होंने यह भी बताया कि सरकार उचित मूल्य के दुकानदारों के लाभ का मार्जिन बढ़ाने तथा उन्हें भी कुछ मदद देने का विचार कर रही है।

सरकार की यह योजना अपर्याप्त होने के बावजूद स्वागत योग्य है। इसका समर्थन करना चाहिए तथा इसको सही ढंग से लागू करवाने में सहयोग देना चाहिए। परन्तु साथ-साथ यह आवश्यक है कि हम आम जनता को उचित दर पर खाद्य सामग्री सप्लाई करने के महत्वपूर्ण प्रश्न को गम्भीरता से लें और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कमजोरियों तथा अनियमितताओं को दूर करें। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो हमें गम्भीर समस्याओं का सामना करने के लिए पर्याप्त जन सहयोग नहीं मिलेगा। इसीलिए आज अन्य प्रश्नों के बजाय खाद्य की समस्या को सर्वाधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मानना होगा। इस सम्बन्ध में हमें सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर एन.के. कृष्णन का यह कथन हमेशा ध्यान में रखना होगा कि 'राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खाद्य की सुरक्षा आवश्यक है।'

प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने 7 अप्रैल 1992 को इंदौर में पुनः कहा है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त करना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि केन्द्र, राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्रशासनों का सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर अधिक ध्यान देना चाहिए तथा इसके कामकाज और प्रगति पर मिल जुल कर नजर रखनी चाहिए। इसके काम काज में जो भी कठिनाइयां, कमियां और अवरोध हों उन्हें दूर करना चाहिए और जरुरतमंद तथा गरीब व्यक्तियों को राहत देने के कार्य को प्राथमिकता देनी चाहिए। उन्होंने कहा कि प्रशासन को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए निचले स्तर पर नियोजन करने पर और अधिक ध्यान देना चाहिए।

सार्वजनिक वितरण को सुदूर गांवों तथा पिछड़े हुए क्षेत्रों में पहुंचाने के साथ-साथ उसकी कमियों को दूर करना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो जरूरत मंद व गरीब लोगों को राहत नहीं पहुंचाई जा सकेगी। इस प्रणाली की सबसे बड़ी कमी यह है कि देश के बहुत बड़े क्षेत्र अब भी इस प्रणाली से वंचित हैं। उचित मूल्य की दुकानें बड़े शहरों में ही नजर आती हैं। सरकार को चाहिए कि वह पूरे देश की सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सर्वेक्षण करा कर तथा इसका जायजा लेकर हर जरुरतमंद क्षेत्र में इसकी दुकानें खोले। इसके लिए गांवों में अनाज के भंडार भी तैयार करने होंगे।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दूसरी बड़ी कमजोरी है कि उचित मूल्य की दुकानों को उपभोक्ता वस्तुओं की पर्याप्त सप्लाई नहीं की जाती। उपभोक्ताओं के पूरा राशन समय पर नहीं मिलता। कभी अनाज, कभी चीनी तथा कभी केरोसिन की कमी बनी रहती है। अनेक बार सरकारी भंडारों से दिया गया माल भी बीच में ही गायब हो जाता है। इसका शिकार गरीब उपभोक्ता ही होता है। आमतौर पर यह देखा जाता है कि उचित मूल्य के निजी दुकानदार राशन का माल राशनकार्डों पर वितरित न कर उसे खुले बाजार

में बेच देते हैं। उचित दर की अनेक दुकानों में तो एक ही छत के नीचे राशन का माल और खुले बाजार का माल एक साथ बिकता है। यही नहीं बल्कि बहुधा उसी दुकान में खुले बाजार का माल उपलब्ध होता है और राशन का माल गायब रहता है। निःसंदेह भ्रष्ट इंस्पेक्टरों और व्यापारियों की मिली-भगत में ऐसा किया जाता है। इस कमी को दूर करने के लिए सख्त कदम उठाने चाहिये और दोषी व्यक्तियों को सजा देनी चाहिए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की एक अन्य गम्भीर त्रुटि यह है कि उचित मूल्य की दुकानों से मिलने वाली उपभोक्ता वस्तुओं में अंधाधुंध मिलावट की जाती है। प्रायः राशन में मिलने वाला अनाज खाने योग्य नहीं होता। स्थिति यह है कि कुछ मिलावटी माल तो सरकारी गोदाम से ही सप्लाई किया जाता है और फिर बाद में राशन के दुकानदार इनमें और मिलावट करते हैं। मिलावट के माल के साथ-साथ सड़े गले माल की भी सप्लाई की जाती है। इसके लिए तर्क यह दिया जाता है कि सरकार को किसानों को राहत देने के उद्देश्य से कभी-कभी भीगा हुआ या कुछ अंश तक सड़ा हुआ अनाज खरीदना पड़ता है। फिर यही माल इन दुकानों को दिया जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि एक ओर तो प्रशासन इतनी अधिक मात्रा के मिलावटी या सड़े और भीगे हुए अनाज की बिक्री की अनुमति देता है तो दूसरी ओर सरकारी निर्देशों में यह भी हिदायत दी गई है कि उचित मूल्य की दुकानों से शुद्ध, साफ, सूखे, खाने योग्य एवं दुर्गंध रहित अनाज का वितरण किया जाए। वास्तव में मिलावट में दी गई उपयुक्त छूट इन 'पाक-साफ' तथा अच्छे उद्देश्यों से दिये गये सरकारी निर्देशों का मजाक बना कर रख देते हैं। सरकार को मिलावट के नियमों पर पुनर्विचार करके उनमें सुधार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सेम्पल (नमूने) भरने की प्रणाली में भी सुधार किया जाना चाहिए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की एक अन्य कमजोरी यह है कि उचित मूल्य दर की दुकानों को निजी व्यापारियों को सौंप दिया गया है। इन व्यापारियों की मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति में न तो कोई अपेक्षित सुधार हुआ है और न ही इन पर कोई कारगर अंकुश है। यह आवश्यक है कि उपभोक्ताओं की जन निगरानी समितियां बनाई जाएं और वे केवल कागजों पर सीमित न रह कर निरन्तर अपना कार्य करती रहें। वास्तव में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को निजी क्षेत्र के चंगुल से मुक्त करके इसे यथासंभव उपभोक्ता सहकारी समितियों को सौंप देना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक ही क्षेत्र में उचित मूल्य की निजी और सहकारी दुकानें खोल कर उपभोक्ता को इनमें से किसी दुकान से राशन लेने की छूट दी जानी चाहिए और पिछली बिक्री की रिपोर्ट को माल की सप्लाई का आधार बनाना चाहिए। यदि ऐसा किया गया तो सहकारी व निजी क्षेत्रों में स्वस्थ प्रतियोगिता होगी। यह प्रसन्नता की बात है कि केन्द्रीय सरकार ने तमिलनाडु, गुजरात और आंध्र प्रदेश की उपभोक्ता सहकारी समितियों की उपलब्धियों का जायजा लेने के बाद राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों को निर्देश दिया है कि उचित मूल्य की नई दुकानें खोलते समय उपभोक्ता सहकारी समितियों को प्राथमिकता दी जाए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य जरुरत मंद लोगों को राहत पहुंचाना है। विश्व के कल्याणकारी एवं समाजवादी राष्ट्र अपनी जनता को उचित मूल्य पर आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की सप्लाई करने को निरन्तर महत्व देते आ रहे हैं। भारत सरकार भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए लगभग 2600 करोड़ रुपये की राहत देती है। राशन की दुकानों के अनाज के मूल्य में सरकारी सहायता 50 से 60 प्रतिशत तक होती है। इस समय नई आर्थिक व्यवस्था, खुला बाजार तथा सरकारी खर्च में कटौती करने का जो नया वातावरण बनाया गया है उसका लाभ उठा कर देश विदेश के कुछ तत्व सरकार को सुझाव दे रहे हैं कि वह सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर अपना खर्च कम करे और धीरे-धीरे इस दायित्व से छुटकारा पा ले। यह प्रसन्नता की बात है कि सरकार ने अभी तक यह सुझाव स्वीकार नहीं किया है परन्तु उसने हाल में उचित मूल्य की दुकानों पर दिये जाने वाले गेहूं, चावल और चीनी के मूल्य बढ़ा दिये है। बार बार की जाने वाली इस मूल्य वृद्धि से गरीब उपभोक्ताओं को राहत देने का उद्देश्य समाप्त हो जाता है। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ० महबूबुल हक ने इस मूल्य वृद्धि की आलोचना करते हुए कहा है कि सरकार को अपने दायित्व का निर्वाह करना चाहिए। यह प्रसन्नता की बात है कि सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के आलोचकों के दबावों की उपेक्षा करके इस प्रणाली को और अधिक व्यापक व सुदृढ़ बना रही है। सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के साथ-साथ सुपर बाजारों का देश भर में जाल बिछाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि उचित मूल्य की दुकानों से सप्लाई की जाने वाली वस्तुओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की जाए। इस प्रणाली को अधिकाधिक जनसमर्थन मिलना चाहिए। महंगाई पर काबू पाने तथा उपभोक्ता को मुनाफाखोरों व जमाखोरों से बचाने का एकमात्र मार्ग सार्वजनिक वितरण प्रणाली को गांव-गांव तक पहुंचाना और उसे सुदृढ़ करना ही है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली उपभोक्ता संरक्षण का महत्वपूर्ण साधन

□ डॉ० राकेश अग्रवाल□

उपभोक्ता चाहे गांव का हो या शहर का आवश्यक वस्तुओं की कमी और मूल्यवृद्धि से समान रूप से प्रभावित होता है। ऐसे में सार्वजनिक वितरण प्रणाली उचित मूल्य पर वस्तुएं उपलब्ध कराके उपभोक्ताओं का सहारा बनती है। देश के गांवों में बसने वाली लगभग तीन चौथाई जनसंख्या के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली के महत्वय को समझाते हुये प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने 1 जनवरी, 1992 को राजस्थान के बाड़मेर में नई सार्वजनिक वितरण प्रणाली का शुभारम्भ की घोषणा की जिसके तहत देश के सूखाग्रस्त, पिछड़े, आदिवासी बाहुल्य दुर्गम रेगिस्तानी व पहाड़ी क्षेत्रों के चुने हुए 1698 खण्डों में पूर्व कार्यरत 78,829 उचित दर दुकानों के अतिरिक्त 11,191 नई दुकानें खोली जा रही हैं। इस नई व्यवस्था से 16 करोड़ 11 हजार अतिरिक्त लोगों को लाभ पहुंचेगा। 1 जनवरी से 31 मार्च, 1992 तक तीन महीनों में 6907 अतिरिक्त उचित दर की दुकानें खोली जा चुकी हैं तथा 10 लाख अतिरिक्त राशनकार्ड जारी किये गये हैं। उचित दर की दुकानों पर अब गेहूं, चावल, चीनी व मिट्टी के तेल के अलावा चाय, साबुन, माचिस, नमक,दालें, अभ्यास-पुस्तिकायें इत्यादि भी उपलब्ध होंगी। नई वितरण प्रणाली के अनुसार प्रति दो हजार जनसंख्या पर एक उचित दर दुकान खोली जायेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत दुकानें बनाने के लिए पंचायतों को प्रेरित किया जायेगा ताकि पंचायत क्षेत्र में ही उचित दर दुकान उपलब्ध हो सके। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की नई योजना में 2.3 लाख टन अनाज भण्डार के लिए एक हजार अतिरिक्त गोदाम बनाये जाने का प्रावधान है। वितरण प्रणाली पर निगरानी रखने के लिए उपभोक्ताओं की सतर्कता समितियों का भी गठन किया जा रहा है।

ऐसी अर्थव्यवस्था के लिए जो अप्रत्याशित मूल्यवृद्धि, साधनों के अभाव तथा नियोजित आर्थिक विकास के दबावों और तनावों से प्रभावित हो, एक स्थायी, सशक्त व देशव्यापी सार्वजनिक वितरण प्रणाली जरूरी है। उस पर यदि मुद्रा की क्रय शक्ति गिर रही हो और आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति सीमित हो तो यह प्रणाली अत्यधिक सफल सिद्ध होती है।

आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के उचित वितरण, मूल्य-नियन्त्रण तथा सामाजिक न्याय के एक महत्वपूर्ण उपाय के रूप में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भूमिका सिद्ध हो चुकी है। यह प्रणाली उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के हितों की पोषक है। क्योंकि एक ओर यह वसूली, खरीद और समर्थन मूल्य से जुड़ी है तथा दूसरी और इसके अन्तर्गत सभी स्थानों पर वितरण समान मूल्य पर किया जाता है। यह प्रणाली आम लोगों को कम खर्च में जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएं निरन्तर उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान करती है। इसलिए यह प्रणाली छठे दशक से सरकार की नीति का एक प्रमुख अंग बनी हुई है।

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विचार कुछ विशिष्ट अनुमानों पर आधारित है। न तो यह समाजवादी देशों की भांति राज्य स्वामित्व वितरण व्यवस्था है और न ही स्कैंडीनेवियन देशों की भांति उपभोक्ता सहकारिताओं की स्वतन्त्र योजना है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली फुटकर व्यवस्था है जो राज्य के निरीक्षण व मार्गदर्शन में चलती है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मन्तव्य आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं का स्थान, समय और आर्थिक पहलू की उपयोगिता को ध्यान में रखकर न्यायपूर्ण कीमत तथा उपयुक्त आधार पर समान वितरण की समुचित व्यवस्था से है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के उद्देश्य

— कमी की दशा में भी आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएं सही मूल्य, सही मात्रा, सही किस्म, सही समय और सही विधि द्वारा उपलब्ध कराना।

— मध्यस्थों का उन्मूलन कर उत्पादक और उपभोक्ताओं में सीधा सम्बन्ध स्थापित करना।

— आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन, आवश्यकतानुसार आयात और भण्डारण द्वारा समुचित आपूर्ति करना जिससे वस्तुओं की मूल्य वृद्धि पर प्रभावी नियन्त्रण लगाया जा सके।

— बाजार में व्याप्त जमाखोरी, मुनाफाकोरी, चोर बाजारी और कृत्रिम अभाव जैसी कुप्रवत्तियों को समाप्त करना।

— उपभोक्ता संरक्षण के लिए व्यावहारिक आधार निर्मित करना जिससे उपभोक्ताओं को मिलावट, नकल, कम माप-तौल, हिसाब में गड़बड़, हेराफेरी आदि अनियमितताओं से बचाया जा सके।

सामान्य वितरण व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादक से उपभोक्ता तक दलाल थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता आदि मध्यस्थों की एक लम्बी शृंखला होती है। प्रत्येक मध्यस्थ अपनी विनियोजित पूंजी, सेवा तथा जोखिम का अधिक से अधिक प्रतिफल प्राप्त कर लेना चाहता है जिसका भार उपभोक्ताओं को ही वहन करना पड़ता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में मध्यस्थों की मुनाफाखोरी के लिए कोई स्थान नहीं होना है। वास्तव में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुएं इस मूल्य पर उपलब्ध कराना है जिसको वे सुविधानुसार वहन कर सकते हैं। इसीलिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली उपभोक्ता संरक्षण के लिए व्यावहारिक आधार पर निर्मित करती है।

उपभोक्ताओं को सही वस्तुएं, सही मूल्य और सही मात्रा में सरलता से मिलने पर उनके समय, शक्ति व धन में बचत होती है। मंहगाई की दशा में अधिक आय भी कम लगती है। अतः सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति नियन्त्रित मूल्यों पर करके सामाजिक जीवन में स्थिरता लायी जा सकती है। सही अर्थों में सन्तोषजनक सार्वजनिक वितरण प्रणाली सरकार की मजदूरी, आय व मूल्य नीति का भी अंग होती है। मजदूरी व वेतनमानों का निर्धारण मूल्य स्तर के आधार पर होता है और मूल्यों पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा प्रभावी नियन्त्रण सम्भव है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने खाद्यान्न तथा आवश्यक वस्तुओं के वितरण में हस्तक्षेप की नीति को अपनाया, जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली का आधार बनी हुई है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के वास्तविक कार्यान्वियन में केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों की संयुक्त जिम्मेदारी है। जहां सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मदों की अधिप्राप्ति करना, उनका भण्डारण करना तथा उन्हें केन्द्रीय गोदामों तक पहुंचाना केन्द्रीय सरकार का कार्य है, वहां सार्वजनिक वितरण प्रणाली के कार्यान्वियन और प्रशासन की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की है। केन्द्रीय सरकार ने मुख्य आवश्यक वस्तुओं जैसे गेहूं, चावल, लेवी चीनी, आयातित खाद्य तेल, मिट्टी का तेल तथा साफ्ट कॉक की अधिप्राप्ति राज्य सरकारों को उनकी आपूर्ति का दायित्व अपने ऊपर लिया है। ये वस्तुएं केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर उपलब्ध करायी जाती हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत उचित दर दुकानों के तन्त्र में लगातार विस्तार हो रहा है। 31 मार्च, 1980 को देश में उचित दर की दुकानों की संख्या 2.42 लाख थी, जो 31 मार्च, 1991 को बढ़कर 3.78 लाख हो गयी। इनमें से 2.62 लाख दुकानें ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 0.88 लाख दुकाने शहरी क्षेत्र में स्थित हैं। ये दुकानें देश के 5196 खण्डों में कार्य कर रही हैं। गत दशक में मुख्य बल इस बात पर दिया गया है कि दुरस्थ, दुर्गम क्षेत्रों में निर्बल ग्रामीण व आदिवासी लोगों को आवश्यक वस्तुएं सुलभ कराने के लिए उचित दर दुकानें खोली जायें। इसके लिए मोबाइल वैनों पर चलती-फिरती दुकानें उपयोगी सिद्ध हुई हैं। मोबाइल वैन योजना के अन्तर्गत 31 मार्च 1991 तक केन्द्रीय सरकार द्वारा 1022.38 लाख रुपये का वित्तीय सहायता 428 वाहनों की खरीद के लिए राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों को दी जा चुकी है।

सार्वजनिक वितरण के माध्यम

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत अनिवार्य वस्तुओं का वितरण निम्नलिखित माध्यमों से किया जाता है, जिनमें निजी और सहकारी इकाइयों का महत्वपूर्ण स्थान—

1. निजी इकाइयां
2. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां
3. सहकारी संस्थाएं
4. सामाजिक संगठन
5. नागरिक आपूर्ति विभाग/निगम

वसूली, भण्डारण और थोक वितरण के माध्यम

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए आवश्यक वस्तुओं की वसूली, भण्डारण और थोक वितरण का कार्य वस्तु के अनुरुप अलग-अलग संगठनों को सौंपा जाता है। योजना में सम्मिलित मुख्य संगठन निम्नलिखित हैं—

1. भारतीय खाद्य निगम तथा नागरिक आपूर्ति निगम,
2. भारतीय तेल निगम, हिन्दुस्तान पैट्रोलियम, भारत पैट्रोलियम तथा सार्वजनिक क्षेत्र में अन्य तेल निगम,
3. कोल इण्डिया,
4. भारतीय राज्य व्यापार निगम,
5. राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ (एन.सी.एफ.)
6. राष्ट्रीय कपड़ा निगम,
7. भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (नेफेड),
8. सेन्ट्रल वेयर हाउसिंग कारपोरेशन आदि।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के नये स्वरूप में उचित दर दुकानों पर माल पहुंचाने की जिम्मेदारी थोक विक्रेता की होगी।

तालिका

भारत में उचित दर दुकानों का विवरण

वर्ष	खाद्यान्न की उपलब्धता (दस लाख मी० टन)	उचित दर दुकानें (लाख में)	सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मात्रा (दसलाखमी०टन)	उचित दर दुकानें प्रति लाख जनसंख्या पर
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1961	75.69	0.40	3.98	—
1965	84.57	1.10	10.08	22.8
1970	98.49	1.22	8.84	22.6
1975	90.63	2.33	11.12	39.0
1980	110.23	2.42	14.99	41.1
1990	170.61	3.61	18.20	—
1991	170.00	3.78	21.45	45.2

स्रोत : ढोलकिया एवं खुराना-पब्लिक डिस्ट्रिब्यूशन सिस्टम एवं वार्षिक रिपोर्ट्स, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति मन्त्रालय, भारत सरकार।

उत्तर पूर्वी राज्यों, सिकिम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के आधार को सुदृढ़ करने के लिए इन राज्यों में नागरिक आपूर्ति निगमों की स्थापना करने और गोदामों का निर्माण करने के लिए एक केन्द्रीय योजना छठी पंचवर्षीय योजना से चल रही है। इसके अतिरिक्त समन्वित आदिवासी विकास कार्यक्रम के क्षेत्रों तथा आदिवासी बहुल राज्यों के लोगों को विशेष रूप से राज्य-सहायता प्राप्त मूल्यों पर खाद्यान्न का वितरण करने की योजना सभी सम्बन्धित राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत भारतीय खाद्य निगम द्वारा राज्य सरकारों तथा संघ राज्य क्षेत्रों को गेहूं और चावल विशेष राज्य-सहायता प्राप्त मूल्य पर दिया जाता है। समन्वित आदिवासी विकास कार्यक्रम के क्षेत्रों तथा आदिवासी बहुल राज्यों के लोगों को विशेष राज्य-सहायता प्राप्त खाद्यान्न देना अब गरीबी कम करने के कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग बन गया है। वास्तव में इन क्षेत्रों में व्याप्त अभाव, गरीबी और जटिलता में लोगों को राहत पहुंचाने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विस्तार की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी दृष्टि से सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तन्त्र को दूरस्थ, दुर्गम, पहाड़ी आदिवासी क्षेत्रों में सुदृढ़ करने का नये सिरे से प्रयत्न किया जा रहा है।

सामाजिक न्याय की दृष्टि से देखा जाये तो सार्वजनिक वितरण प्रणाली स्वयं में एक उत्तम व्यवस्था प्रतीत होती है किन्तु व्यावहारिकता की दृष्टि से अनेक क्षेत्रों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली अनेक सीमाओं और दोषों के कारण लोगों को अपेक्षित लाभ नहीं पहुंचा रही है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को जनहित में सक्षम व प्रभावी बनाने के लिए कुछ सुधारों की आवश्यकता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली से सम्बन्धित उचित दर दुकानों पर निजी डीलर्स का वर्चस्व है, जिस कारण निजी व्यापार की बुराइयां इन उचित दर दुकानों पर भी दिखायी देती हैं। प्रत्यक्ष रूप से अधिक लाभ होने के कारण उचित दर दुकानों के निजी डीलर्स अनैतिक तरीकों से अधिक मुनाफा कमाने की कोशिश में लगे रहते हैं। फलस्वरूप उपभोक्ताओं को सार्वजनिक वितरण प्रणाली का वांछित लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है। इसलिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के कार्य में निजी डीलर्स के स्थान पर सहकारी संस्थाओं का अधिक सहयोग लेना चाहिए। सम्पूर्ण देश में सहकारी समितियों का व्यापक जाल फैला हुआ है, जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली का बड़ा कार्य करने में सक्षम भी हैं और जिनसे बहुत बड़ी संख्या के लोग सम्बद्ध भी हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के कार्य में संलग्न उचित दर दुकानों पर वितरित की जाने वाली वस्तुओं का प्रायः अभाव रहता है। इसके दो प्रमुख कारण हैं एक तो आपूर्ति स्रोतों से इन दुकानों को सही समय पर वस्तुओं का आपूर्ति न होना। दूसरे दुकानदार द्वारा वस्तुओं की कालाबाजारी कर लेना। ये दुकानें नियमित नहीं खुलती हैं, जिस कारण बहुत से राशन कार्डधारी वस्तुएं प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। अतः वस्तुओं की आपूर्ति और दुकानों पर उनकी उपलब्धि का निरंतर प्रभावी निरीक्षण होना जरूरी है। इससे उचित दर दुकानों पर वितरित की जाने वाली वस्तुओं की किस्म पर भी नियन्त्रण रखा जा सकता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत अधिक से अधिक आम उपभोक्ता वस्तुओं को उचित दर दुकानों के माध्यम से वितरित किया जाये। गरीब और बेरोजगार लोगों के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को रोजगार कार्यक्रमों से जोड़ा जाये। सरकारी अनुदान से संचालित सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अधिक लाभ गरीबों को पहुंचाने के लिए उच्च आय वर्ग के लोगों को इस प्रणाली से बाहर रखा जा सकता है।

उचित दर दुकानों पर जाली राशनकार्डों तथा जाली यूनिटों की भरमार के कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भावना आहत होती है क्योंकि इसमें जरूरतमंद लोगों का हित प्रभावित होता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली जिन निर्बल वर्ग के लोगों के लिए कार्यान्वित

की गई है, अनेक बार वे ही राशन कार्डों की सही व्यवस्था न होने के कारण इस प्रणाली का अंग बनने से वंचित रह जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि राशन कार्डों की व्यवस्था जनगणना के आधार पर की जानी चाहिए। राशन कार्डों की अनियमितताओं को दूर करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली को एक सीमा तक प्रभावी बनाया जा सकता है।

बहुत सी उचित दर दुकानों के डीलर्स अपनी दुकानें व्यापारियों को ठेके पर दे देते हैं। जिस कारण एक और मध्यस्थ के आ जाने से उपभोक्ताओं को सार्वजिक प्रणाली का उचित लाभ नहीं मिल पाता है। ठेकेदारों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल भावना से कोई लेना देना नहीं होता है। वह तो अधिक से अधिक लाभ कमाने के उपाय ढूंढता है। उचित दर दुकानों की वस्तुओं की चोर बाजारी इसी का परिणाम होता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को इन बुराइयों से मुक्त करके कारगर बनाने के लिए इस सम्पूर्ण व्यवस्था पर प्रभावी नियन्त्रण आवश्यक है। इसलिए उचित दर दुकानों का सतर्कता समितियों द्वारा नियमित निरीक्षण किया जाना चाहिए। यह बात निर्विवाद सत्य है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली ने बाजार में होने वाली आवश्यक वस्तुओं की कमी को दूर करके मूल्य वृद्धि को सदैव रोका है। इससे गरीब उपभोक्ताओं को काफी राहत मिली है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की इस उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए ही इसे नये उत्साह के साथ नये सिरे से संगठित किया जा रहा है जिससे इसमें व्याप्त कमियों को दूर करके जनहित के व्यापक उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। प्राकृतिक तथा सामाजिक कारणों से आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों के उपभोक्ताओं के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की नई योजना एक सुखद सम्भावना है।

कोई भी योजना, प्रणाली अथवा कार्यक्रम तब तक उपयोगी नहीं बनता जब तक उसका लाभ उठाने वाले व्यक्ति जागरूक नहीं होते भले ही उसमें कितना ही सुधार क्यों न कर लिया जाये। भारत में उपभोक्ता आन्दोलन में कमी के कारण ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हो सका है। सरकार जनकल्याण के लिए ही भारी अनुदान देकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली उपभोक्ता संरक्षण का प्रभाव उपकरण बन सकती है। स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठन भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक उपयोगी बनाने में सक्रिय योगदान कर सकते हैं।

नई सार्वजनिक वितरण प्रणाली से सुदूर गांवों में भी आवश्यक वस्तुओं की समुचित आपूर्ति की आशा जगी है। इस योजना का प्रभावी क्रियान्वयन ग्रामीणों की रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने में अत्यन्त सहायक होगा।

प्रवक्ता, एस.एस.वी. कॉलेज,
"हिमदीप" राधापुरी
हापुड़-245101 (उ०प्र०)

भारत में सिंचाई सुविधा का विकास

□ डा० गजेन्द्र पाल सिंह □

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि हमारे देश में केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र या उद्योग धन्धा ही नहीं अपितु अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। देश के उद्योग धन्धे विदेशी व्यापार, विदेशी मुद्रा अर्जन, विभिन्न योजनाओं की सफलता एवं राजनीतिक स्थायित्व भी कृषि पर ही निर्भर है। अत: ऐसी परिस्थिति में कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता दिये जाने की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने कृषि विकास दूसरे शब्दों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास की दिशा में अनेकानेक महत्वाकांक्षी योजनाएं लागू की हैं, पर आज भी भारतीय कृषि का विकास अपेक्षित गति व दिशा में नहीं हो पाया है। भारतीय कृषि के पिछड़ेपन व कृषकों के निर्धनता के कारणों में एक प्रमुख कारण भारतीय कृषि व कृषकों की प्रकृति पर निर्भरता है। अत: कृषि की उपज व कृषि के क्षेत्र बढ़ाने, बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की आपूर्ति व कृषि को लाभप्रद व्यवसाय बनाने के लिए यह परमावश्यक है कि कृषि की प्रकृति पर निर्भरता को कम करते हुए कृत्रिम उपायों द्वारा खेतों को सिंचाई की समुचित सुविधा उपलब्ध करायी जाय। भारत की कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समृद्धि तथा उसका स्थायित्व कुशल सिंचाई साधनों पर ही आधारित है। यदि सिंचाई के साधन अपर्याप्त व अकुशल होंगे तो निश्चय ही कृषि उत्पादकता वृद्धि के सभी प्रयास असफल सिद्ध होंगे। इस संदर्भ में महात्मा गांधी के ये शब्द सर्वथा उपयुक्त हैं ''सभी गांवों में सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध कराने से अधिक आवश्यक कोई कार्य नहीं है, क्योंकि सिंचाई ही वह आधार है जिस पर खेती व ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की प्रगति निर्भर करती है।''

भारत में सिंचाई व्यवस्था

भारतवर्ष में सदियों से तालाबों, कुओं व नहरों द्वारा सिंचाई की जाती रही है। गुप्त, मौर्य तथा अन्य शासकों ने तालाबों, कुओं व नहरों के निर्माण हेतु अपने राजकोष का पर्याप्त धन व्यय किया था। यह परम्परा मुगल शासकों के शासन काल तक चलती रही। हुमायूं, शेरशाहसूरी, अकबर, जहाँगीर यहां तक कि औरंगजेब के शासन काल में भी अनेक नहरों, तालाबों व कुओं का निर्माण कराया गया। उनमें से आज भी बहुत से प्राचीन भारतीय सिंचाई के स्मारकों के रूप में विद्यमान हैं।

ब्रिटिश सरकार ने सिंचाई का देश की अर्थव्यवस्था में सर्वाधिक महत्व होने पर भी कुओं, तालाबों व नहरों के निर्माण की दिशा में कोई रूचि नहीं ली। पूरी 19 वीं शताब्दी में सिंचाई संसाधनों के विकास पर मात्र 45 करोड़ रुपये (4.5 करोड़ स्टर्लिंग पौंड) व्यय किये गये। 19 वीं शताब्दी के अंत में 19.7 करोड़ एकड़ कुल कृषि क्षेत्र था जिसमें से 3 करोड़ एकड़ अर्थात मात्र 15 प्रतिशत भू-भाग को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध थी पर 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही ब्रिटिश सरकार की नीति में परिवर्तन आया और सर्वप्रथम 1901 में सिंचाई आयोग की स्थापना की गयी जिसने सिंचाई के साधनों के विकास हेतु नये सिरे से कार्यक्रम प्रारम्भ किया। 1901 से 1950-51 के बीच सिंचित क्षेत्र 3 करोड़ एकड़ से बढ़के 5.4 करोड़ एकड़ हो गया।

योजना काल में सिंचाई साधनों का विकास

सदियों की दासता व आर्थिक दुर्दशा से पीड़ित भारत में राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता के स्वपन को साकार बनाने के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया गया। योजना आयोग ने सिंचाई साधनों सम्बन्धी सभी योजनाओं व कार्यक्रमों को तीन वर्गों में विभाजित किया है :—

बड़ी सिंचाई योजनाएं

बड़ी सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत उन सिंचाई योजनाओं व कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है जिसके अन्तर्गत 10 हजार हेक्टेयर से भी अधिक कृषि योग्य क्षेत्र आता है। इस योजना के अन्तर्गत मुख्य रूप से बड़ी नहरें व बहुउद्देशीय सिंचाई योजनाएं आती हैं, जैसे— राजस्थान नहर परियोजना, भाखड़ा-नांगल परियोजना, दामोदर घाटी परियोजना, चम्बल परियोजना, हीराकुन्ड परियोजना, रामगंगा परियोजना, नागार्जुन सागर परियोजना, तुंगभद्रा परियोजना, माहीपरियोजना, शारदा सहायक परियोजना व मयूराक्षी परियोजना आदि।

मध्यम सिंचाई योजनाएं

मध्यम सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत उन योजनाओं को सम्मिलित किया जाता है जिसके अन्तर्गत 2 हजार हेक्टयेर से 10 हजार हेक्टेयर कृषि योग्य क्षेत्र आता है। इस योजना के अन्तर्गत छोटी नहरों का निर्माण किया जाता है।

छोटी सिंचाई योजनाएं

छोटी सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत उन योजनाओं को सम्मिलित किया जाता है जिसके अन्तर्गत 2 हजार हेक्टेयर तक कृषि योग्य क्षेत्र आता है। इसमें कुएं, तालाब, नलकूप व छोटी नहरें आदि आती हैं।

1950-51 में जब भारत में नियोजित आर्थिक विकास प्रारम्भ किया गया तो उन दिनों बड़ी तथा मध्यम सिंचाई योजनाओं के अधीन .97 करोड़ हेक्टेयर व छोटी सिंचाई योजनाओं के अधीन 1.29 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र था, इस प्रकार कुल मिलाकर 2.26 करोड़ हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की सुविधा प्राप्त थी। वर्ष 1989-90 के अंत तक बड़ी तथा मध्यम सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत कुल क्षेत्र बढ़कर 3.65 करोड़ हेक्टेयर तथा छोटी सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत 4.45 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र आ गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर सिंचाई अधीन क्षेत्र 8.10 करोड़ हेक्टेयर हो गया है। विवरण निम्न है।

भारत में सिंचित कृषि क्षेत्र

(करोड़ हेक्टेयर में)

वर्ष	बड़ी तथा मध्यम सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत क्षेत्र	छोटी सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत क्षेत्र	सिंचाई अधीन क्षेत्र	बोया गया कुल क्षेत्र	सिंचाई अधीन कुल क्षेत्र प्रतिशत में
1950-51	0.97	1.29	2.26	13.19	17.1
1960-61	1.31	1.48	2.79	15.28	18.3
1970-71	1.73	2.07	3.80	16.58	23.0
1980-81	2.27	3.14	5.41	17.31	28.6
1984-85 (छठीं योजना)	3.05	3.75	6.80	17.60	38.6
1989-90 (सातवीं योजना)	3.65	4.45	8.10	18.07	45.0

भारत में 1989-90 व सातवीं पंचवर्षीय योजना

छठी योजना –

छठी योजना में कृषि विकास कार्यक्रमों में सिंचाई सुविधा के विकास के कार्य को उच्च प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार किया गया। इस योजना में .65 करोड़ हेक्टेयर बड़ी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं द्वारा व .85 करोड़ हेक्येयर बड़ी परियोजना द्वारा अर्थात कुल 1.50 करोड़ हेक्टेयर भूमि को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराने का लक्ष्य स्वीकार किया गया था, पर वित्तीय कठिनाइयों के कारण इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका फिर भी इस योजना के दौरान सिंचाई क्षेत्र में औसतन .22 करोड़ हेक्टेयर प्रतिवर्ष की दर से कुल 1.10 करोड़ हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि को सिंचाई सुविधाओं की विकास की दृष्टि से छठी योजना अब तक की सभी योजनाओं में अग्रणी रही है।

योजना काल में सिंचाई परिव्यय व सिंचाई क्षमता का विकास

योजना	कुल व्यय (करोड़ रुपये में)	कुल योजना व्यय का प्रतिशत	संचयी सिंचाई क्षमता (करोड़ हेक्टेयर में)
पहली योजना	434	22.2	2.60
दूसरी योजना	430	9.2	2.90
तीसरी योजना	665	7.8	3.40
चौथी योजना	1354	8.6	4.40
पांचवी योजना	3877	9.8	5.20
छठी योजना	10930	10.0	6.80
सातवीं योजना	14360	8.45	8.10

आर्थिक समीक्षा 1988-89 व सातवीं योजना

सातवीं योजना

सातवीं पंचवर्षीय योजना में सिंचाई पर 14,360 करोड़ रुपये व्यय किया गया है, जिसमें से 11,555 करोड़ रुपये बड़ी व मध्यम परियोजनाओं पर व 2,805 करोड़ रुपये छोटी सिंचाई परियोजनाओं पर व्यय किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत अधूरी छूटी हुई परियोजनाओं को पूरा करना व सूखा प्रवृत्त, जनजातीय व पिछड़े क्षेत्रों में मध्यम सिंचाई परियोजनाओं का कार्य प्रारम्भ किया गया। परिणाम स्वरूप पूरे योजना काल में 1.30 करोड़ हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराया जाना सम्भव हो पाया है। जिससे 1989-90 के अंत तक देश में 8.10 करोड़ हेक्टेयर भूमि को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। वर्तमान में संचालित परियोजनाओं के पूरा होने पर सन् 2000 तक देश में कुल 11.3 करोड़ हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो जाने की आशा है जो कुल बोये गये क्षेत्र का 52 प्रतिशत होगा। इस प्रकार सन्

शेष पृष्ठ 34 पर

मुद्दा ग्रामीण महिलाओं के विकास का

□ प्रभात कुमार सिंघल □

महिला विकास की चर्चा प्राय: उठती रहती है। जब चर्चा विशेषकर ग्रामीण महिलाओं के विकास के प्रश्न से जुड़ी हो तो अत्यन्त जटिल होती है। ग्रामीण इलाकों में महिलाओं की एक विशेष स्थिति और परिवेश होता है। उनकी समस्याएँ विशेष प्रकृति की होती हैं। एक तरफ उनकी परम्परागत संस्कृति, अंध विश्वास और रूढ़िवादिता होती है जिससे अपने अज्ञान के कारण वे इनसे मुक्त नहीं हो पातीं दूसरे इनके विकास के लिये चलने वाले कार्यक्रमों में इनकी भागीदारी का अभाव बना रहता है।

'महिलाओं के विकास' विषय पर हाल में राजस्थान की राजधानी जयपुर में स्थित हरिशचन्द्र माथुर लोक प्रशासन संस्थान द्वारा एक सप्ताह का प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। उसी में मुझे भी एक संभागी के नाते भाग लेने का मौका मिला। कार्यक्रम में महिला विकास परियोजना, समेकित बाल विकास परियोजना, परियोजना निदेशक जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, डवाकरा कार्यक्रम प्रभारी एवं सूचना जन सम्पर्क के लगभग 18 महिला एवं पुरुष अधिकारियों ने भाग लिया। कार्यक्रम की रूपरेखा कोर्स निदेशक श्रीमती अनिता ने तैयार की।

इस सप्ताह के महिला विकास कार्यक्रम में आपसी अनुभव बांटने के साथ-साथ वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी, स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों के अनुभवों पर चर्चा, अलग-अलग समूहों में अलग-अलग पक्षों पर चर्चा कर रिपोर्ट तैयार करना तथा महिला विकास कार्यक्रमों का मौके पर जाकर प्रत्यक्ष अनुभव करना जैसे कार्यक्रम शामिल किये गये। विचार विमर्श से महिला विकास के उभरे कुछ पहलु निम्न प्रकार हैं:-

महिला विकास का अर्थ

सामान्य रूप से महिला विकास का अर्थ समान अधिकार से लगा सकते हैं। अधिकार, अवसर, इज्जत एवं सत्ता की समानता। महिलाओं को बचपन से लिंग आधार पर हेय की दृष्टि से देखा जाता है। जीवन के हर क्षेत्र में उसके प्रति दुहरा मापदण्ड अपनाया जाता है। इसी का परिणाम है कि आज भी प्रयासों के अपेक्षित परिणाम कोसों दूर हैं।

लिंग विभेद की प्रक्रिया घर से ही प्रारंभ होती है। लड़की को जन्म लेते ही मारने की प्रथा प्रचलित थी। इसका और भी घिनौना रूप भ्रूण हत्या के रूप में सामने आया है। यही उदाहरण लड़कियों के प्रति समाज का सोच प्रकट करते हैं।

यदि किसी प्रकार कन्या का जन्म हो भी जाये तो शिक्षा-स्वास्थ्य आदि में वे भेदभाव की शिकार बनती है। लड़कियों को दूसरे घर जाना है ज्यादा पढ़ाकर क्या करना है की भावना लड़कियों को आगे बढ़ने से रोकती है। ग्रामीण इलाकों में तो कन्या शिक्षा की हालत और भी दयनीय है। वहां लड़कियों को स्कूल भेजने की अपेक्षा छोटे भाई-बहनों को संभालने एवं खेती बाड़ी में सहयोग लेना अच्छा माना जाता है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर युवतियां मेहनत-मजदूरी करने पर विवश रहती हैं। इतना श्रम करने पर भी उसका घर में कोई स्थान नहीं होता।

एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 1.20 करोड़ बालिकाओं का जन्म होता है, जिनमें से प्रतिवर्ष लगभग 3 लाख की मृत्यु हो जाती है। जीवित में से 15 वर्ष की आयु तक आते-आते कुपोषण एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में 25 प्रतिशत बालिकाओं की मृत्यु हो जाती है। लड़कियों को पौष्टिक आहार देना अतिरिक्त भार मानते हैं। इस प्रकार समानता का हक कोरी कागजी बातें बनकर रह जाता है।

जागृति का अभियान

महिलाओं को अपनी स्थिति से सचेत करने के लिए जनजागृति का अभियान चलाना होगा। यह दो मोर्चे पर होगा। एक अपने शोषण, दमन एवं दासता के खिलाफ एवं दूसरे अपनी अस्मिता अस्तित्व के लिये। महिला की बड़ी अजीब स्थिति है। वह जन्म लेती है। उसके प्रति तिरस्कार भावना शुरू हो जाती है। लड़का होने पर खुशियां मनाई जाती हैं परन्तु लड़की होने पर गमी जैसा माहौल बन जाता है। शाला में पिता के नाम से पहचान बनती है। पिता का घर उसका अपना नहीं होता है। विवाह होकर ससुराल

जाती है तो पिता का घर पराया मान लिया जाता है। ससुराल में भी वह पराये घर में आती है। आखिर उसकी अपनी पहचान, अस्तित्व क्या हुआ। ऐसे में अपनी अस्मिता के लिये उसे स्वयं जागरूक बनना होगा।

महिला विकास के प्रयास

राजस्थान में ग्रामीण महिलाओं के विकास के लिए चहुंतरफा प्रयास किये जा रहे हैं। हर वर्ष ग्रामीण इलाकों में बालिकाओं को शालाओं में नाम लिखाने का अभियान चलाया जाता है फिर भी राजस्थान में महिला साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है।

महिलाओं एवं शिशुओं को कुपोषण से बचाने एवं स्वास्थ्य रक्षा के प्रयास समेकित बाल विकास परियोजना के माध्यम से किये जा रहे हैं। यह कार्यक्रम पांचवीं पंचवर्षीय योजना में प्रथम बार लागू किया गया। आंगनबाड़ी कार्यकर्ता के माध्यम से पोषाहार वितरण, स्वास्थ्य परीक्षण, अनौपचारिक शिक्षा एवं टीकाकरण कार्य किया जाता है। इन कार्यक्रमों का सीधा लाभ ग्रामीण महिलाओं एवं शिशुओं को मिलता है।

महिला मंडलों के माध्यम से रात को गीत-भजन आदि सांस्कृतिक माहौल में परिवार कल्याण एवं टीकाकरण का महत्व, अल्प बचत का महत्व, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन पर चर्चा होती है। इनमें महिलाएं खुलकर भाग लेती हैं।

ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य सेवाएं जन जन तक पहुंचाने के लिए समन्वित सेवा एप्रोच पद्धति को अपनाया गया है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को सब गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बनाया गया है। महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता, ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य रक्षा हेतु जिम्मेवार है। प्रसव से पूर्व एवं पश्चात देखभाल करना, आवश्यक टीके लगवाना, सुरक्षित प्रसव कराना, सामान्य बीमारी में प्राथमिक उपचार करना इनकी सेवाओं में समाहित कर दिया गया है। जरूरत इस बात की है कि स्थानीय महिला समुदाय की भागीदारी जुड़े।

महिला विकास अभिकरण जिसका मूल ध्येय महिला उत्थान हेतु समन्वय बनाकर कार्य करता है राज्य के 9 जिलों में चल रहा है। प्रचेता एवं साथिन के माध्यम से महिलाओं में जनजागृति के प्रयास किये जा रहे हैं। प्रति 500 की आबादी पर एक महिला विकास केन्द्र बनाया गया है। इनका मुख्य ध्येय महिलाओं में समानता के बढ़ावा देने में सक्रिय भागीदारी बढ़ाना तथा साथिन के सहयोग से महिला का जुड़ाव करना है और सामाजिक मान्यताओं को बदलने में जनजागृति अभियान में सहायता करना।

जाजम बैठक

महिला विकास कार्यक्रम के अंतर्गत जाजम बैठक सामनता का एक मंच है। महिलाएँ इसमें बिना किसी भेदभाव के भाग लेती हैं। भयमुक्त एवं निडर होकर अपनी समस्याओं पर बातचीत कर निर्णय करती हैं। बिना किसी मनोवैज्ञानिक दबाव के पुरुषों से बात करती हैं इससे उन्हें अहसास होता है कि सभी बराबर हैं।

मंडालिया गांव जो जयपुर जिले में फागी पंचायत समिति में आता है जाजम बैठक देखने को मिली। मंजु जो एम.ए. पास है यहां प्रचेता है। मोहनी कंवर इस गांव में साथिन है। आसपास के गांवों की साथिनें भी यहां थीं। चन्द्रकांता, भूरी, बाकरोटो, टोटीं, कमला आदि साथिनें डेढ वर्ष से छः वर्ष से इस कार्यक्रम से जुड़ी हैं। बैठक आरंभ हुई आपसी परिचय के पश्चात, एक सामूहिक गीत के साथ। जिसमें समाज में कन्या के प्रति दृष्टिकोण का भाव छुपा था।

मैं मारी मां के जन्म लियो
नो नो आंसू टपकाजी
जब म्हारा बीरा जन्म लिया
नौबत बाजा बाजियो जी।''

आगे गीत के बोल के अनुसार 12 वर्ष में मेरा ब्याह कर दिया और चार-पांच बच्चे होने से हालत बिगड़ने का भाव उजागर किया गया है। बार-बार शादी नहीं करने एवं कन्या को खूब पढ़ाने का संदेश भी रोचकता के साथ गीत में दिया गया है। इसी प्रकार के चेतना गीतों के माध्यम से महिला विकास के मुद्दों को उठाया गया है।

मनफूली ने बताया, बाल विवाह रोकने की कोशिश जाजम बैठक में हुई है। आखातीज पर पांच वर्ष और तीन वर्ष के बच्चों का विवाह रुकवाया गया। टीकाकरण, परिवार कल्याण, दहेज प्रथा पर हुई चर्चा में सभी उपस्थित महिला एवं पुरुषों ने भाग लिया। स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी प्रश्न भी जाजम बैठक का विषय है। इसमें सभी प्रकार की महिला समस्याओं का हल खोजा जाता है। मंडालिया गांव में आज तक दहेज का एक भी प्रकरण नहीं हुआ।

एम.बी.बी.एस. डा० श्रीमती प्रीतम यहां विगत पांच-छः वर्षों से परियोजना निदेशक हैं। इन्होंने राजस्थान महिला मंचों से महिला समस्याओं को मुखर किया है। महिला समस्याओं को दूर कर विकास करना आपके विचार-व्यवहार में प्रत्यक्ष झलकता है।

आत्म निर्भरता के प्रयास

ग्रामीण महिलाओं को आत्म निर्भर बनाने एवं उन्हें शिक्षित करने के साथ साथ आर्थिक सहायता हेतु महिलाओं एवं बच्चों के कल्याण के लिये ड्वाकरा योजना राजस्थान में चयनित जिलों में आरंभ की गई है। योजना में 15-20 महिलाओं का समूह बनाया जाता है। महिलाओं ने अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय प्रारंभ किया है। इस हेतु जिला ग्रामीण विकास अभिकरण द्वारा चुने गये व्यवसाय में प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण पूरा करने पर 15 हजार की आर्थिक सहायता समूह को उपलब्ध कराई जाती है। समूह सर्वसम्मती से अपना समूह लीडर चुनता है जो सरकारी कर्मचारियों एवं महिला समूह के बीच सम्पर्क एवं तालमेल बनाने का काम करता है। ग्रामसेविका हिसाब किताब रखने में मदद करती है। इनके द्वारा बनाये सामान की बिक्री व्यवस्था सुनिश्चित की जाने के अधिक प्रयास जरूरी है।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के माध्यम से भी जरूरतमंद गरीब, विधवा, अपंग महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आर्थिक संसाधन सुलभ कराये जाते हैं। लक्ष्यों में महिलाओं को तीस प्रतिशत आरक्षित किया गया है।

समन्वय जरूरी

ग्रामीण महिलाओं के विकास की पूर्णता के लिए आवश्यक है कि सभी एजेन्सियां समन्वय से काम करें। इस प्रकार का माहौल बनायें कि महिला बैठक में चाहे वह महिला मंडल हो या जाजम, महिलाएं अपनी सामाजिक समस्याओं के साथ के साथ विकास कार्यक्रमों में भागीदार बनें। गांव के विकास की मांग महिला मंचों से उठे।

चर्चा के दौरान महिला विकास से सीधी जुड़ी दो संस्थाओं महिला विकास अभिकरण एवं ईडारा में कारगर तालमेल की आवश्यकता महसूस की गई। ईडारा को जिलों में प्रशिक्षण, सूचीकरण,प्रलेखन का मुख्य काम प्राथमिकता पर करना चाहिए।

ड्वाकरा, समेकित बाल विकास परियोजना एवं महिला ग्रामीण विकास अभिकरण तीनों ही महिलाओं के कल्याण हेतु कार्यरत हैं परन्तु इनके प्रयासों में आपसी तालमेल का अभाव है। ग्राम सेविकाएँ, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता एवं साथिनों को परस्पर सामंजस्य से कार्य करना चाहिए। तीनों विभागों का परस्पर अन्तः विभागीय संबंधी भी अपेक्षित हैं।

आंगबाड़ी कार्यकर्त्ता की उनकी सेवाओं के संदर्भ पुनः विचार करना होगा। सामाजिक सेवा भावना एवं सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन से जुड़ती है तो उसका सम्मानित मानदेय देने पर पुनः विचार जरूरी है। महिला भागीदारी कितनी बढ़ पाई है का अध्ययन कराया जाना आवश्यक है।

जिला स्तर पर कार्यरत महिला विकास अभिकरणों को और सुदृढ़ एवं अधिकार सम्पन्न बनाकर इसकी उप इकाई विकास खंड स्तर पर स्थापित की जानी चाहिए। राज्य एवं जिला स्तरों पर महिला विकास परामर्शदात्री समितियां बनाई जानी चाहिए ताकि महिला विकास कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित हो कार्यक्रम पूरी गति ले सके।

अंतिम उपाय-चेतना

स्पष्ट है कि ग्रामीण महिलाओं के सर्वांगीण विकास एवं महिलाओं को समानता का दर्जा लेने हेतु सबसे बड़ी पहल स्वयं करनी होगी। महिलाओं में पहला काम स्वयं अपने आपमें आत्म गौरव एवं विश्वास उत्पन्न करना होगा। अनौपचारिक शिक्षा इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। समानता की भावना जागृत करने हेतु हमें स्वयं अपने रूढ़िवादी विचारों को बदलना होगा। शिक्षा और सामाजिक जागरूकता का अभियान तेजी से चलाना होगा।

के.आर.-56,
सिविल लाईन
कोटा-324001(राज०)

मत्स्य पालन उद्योग— एक नई दिशा की ओर

□ राजेश कुमार गौतम □

कृषि एवं पशुपालन उद्योग के साथ-साथ मत्स्य उद्योग को प्राथमिक उद्योगों की श्रेणी में रखा गया। मत्स्य पालन भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

मत्स्य उद्योग के साधनों का विकास इस बात में निहित है कि वे हमारे भूमि साधनों के प्रतिस्थापक बन सकते हैं। इस व्यवसाय का महत्व न तो केवल इस वजह से है कि मछलियों से हमको प्रतिवर्ष लगभग पैंतीस लाख टन पशुजनित प्रोटीन प्राप्त होता है जो कि हमारी जनसंख्या के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और आवश्यक पोषक तत्व है और न ही केवल इस वजह से है कि इसके निर्यात से हम प्रतिवर्ष लगभग 500-600 करोड़ रुपये विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं बल्कि इसके द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था में लगभग 20 लाख लोगों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से रोजगार उपलब्ध कराने के कारण इसकी विशिष्ट महत्ता है। इसके अतिरिक्त शैवाल के संवर्द्धन से हमें प्रोटीनयुक्त खाद मिलती है जो भारतीय कृषि की उत्पादकता वृद्धि में अपना अतुलनीय योगदान देती है।

वर्तमान में भारत में लगभग 20 लाख क्रियाशील मछुआरे हैं तथा मछुआरों की कुल आबादी लगभग 70 लाख है। भारत विश्व में मत्स्य उत्पादन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वर्तमान में मत्स्य उत्पादन में भारत का विश्व में छठा-सातवां स्थान है। भारत झींगा उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान रखता है। भारत में विश्व का 17 प्रतिशत झींगा उत्पादन होता है।

मत्स्य उत्पादन के स्रोत एवं उत्पादन

भारत में मत्स्य उत्पादन के दो स्रोत प्रमुख हैं :—

1. अन्तर्देशस्थ 2. समुद्री तट— प्रमुख नदियां और उनकी सहायक नदियां, तालाब, नहरें, झील एवं जलाशय आदि अन्तर्देशस्थ मत्स्य ग्रहण क्षेत्र हैं। भारतीय आंतरिक नदियां 17,000 मील क्षेत्र में फैली हैं तथा अन्य सहायक जल-कुल्याएं (चैनल) 70,000 मील क्षेत्र में फैली हैं। अन्त: स्थलीय स्रोतों से 1985-86 में 11.60 लाख टन मछली पकड़ी गई। 1986-87 में 12.34 लाख टन मत्स्य उत्पादन हुआ। सामुद्रिक स्रोतों के संदर्भ में भारत एक बहुत ही भाग्यशाली राष्ट्र है। इसके पास 7517 किलोमीटर लम्बा समुद्र तट है जिससे 1985-86 में 83,561 टन मछली का निर्यात किया गया। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त मत्स्य उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है। गत तीस वर्षों में सुमद्र से मछली पकड़ने में लगभग तीन गुणा उत्पादन बढ़ा है सरकार द्वारा मत्स्य उत्पादन संवर्द्धन के लिए उठाये गये कदमों के फलस्वरूप भारत में अन्त:स्थलीय मत्स्य उत्पादन में छ: गुनी वृद्धि हुई। 1950-51 में 7.5 लाख टन मछलियों का उत्पादन हुआ था जिसमें से 2.15 लाख टन अंत:स्थलीय स्रोतों से तथा 5.34 लाख टन समुद्री क्षेत्र से था। 1986-87 में मत्स्य उत्पादन बढ़कर 29.2 लाख टन था जिसमें से 12.34 लाख टन आंतरिक स्रोतों से तथा 16.82 लाख टन सामुद्रिक स्रोतों से था। अन्य वर्षों में उत्पादन इस प्रकार था:

(स्रोत-राज.पत्रिका)

वर्ष	आंतरिक स्रोत	सामुद्रिक स्रोत
87-88	13.0 लाख टन	16.6 लाख टन
88-89	13.3 लाख टन	18.2 लाख टन
89-90	14.0 लाख टन	22.8 लाख टन
90-91	15.4 लाख टन	23.0 लाख टन

मत्स्य एवं इससे निर्मित पदार्थों के निर्यात से भारत को विपुल मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा के संकट को देखते हुए यह क्षेत्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

भारत सरकार निरन्तर प्रयासरत है कि प्रकृति प्रदत्त इस नि:शुल्क व विपुल स्रोत के उत्पादन में वृद्धि की जाये। कृषि राष्ट्रीय आयोग के अनुमान के अनुसार सन् 2000 तक भारत में मत्स्य उत्पादन 80 लाख टन हो जायेगा जिसमें 35 लाख टन अन्त:स्थलीय क्षेत्र से तथा 45 लाख टन समुद्री क्षेत्र से होगा।

समस्याओं का पुंज

मूलत: प्राथमिक उद्योग होने के कारण मत्स्य उद्योग को उन सभी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है जिनसे सामान्यत: कृषि अथवा डेयरी उद्योग को जूझना पड़ता है।

आज का मछुआरा वर्ग मध्यस्थों के चंगुल में फंस कर उनके

द्वारा किये जाने वाले शोषण एवं जुल्मों को सहने के लिए विवश है चूंकि अधिकांशतः मछुआरे असंगठित व गरीब होते हैं अतः ये मध्यस्थ उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें ऋण प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मौसम की खराबी, अस्वस्थता या संयोगवश तमाम कोशिशों के बावजूद मछलियां काफी समय तक नहीं मिल पाती जिससे मछुआरों के भूखों मरने की नौबत आ जाती है। मध्यस्थ इसी अवसर की ताक में रहते हैं तथा उन्हें अधिक ब्याज पर पैसा उधार देकर अपने चंगुल में फंसा लेते है। बाद में उन्हें इस बात के लिए विवश कर देते हैं कि वे अपनी मछलियाँ इन मध्यस्थों को ही बेचें। ये मध्यस्थ अनिश्चित काल तक उनसे कौड़ियों के भाव मछलियां खरीदते रहते हैं। इसके फलस्वरूप कड़ी मेहनत करने वाला मछुआरा इनके शोषण चक्र में सदैव के लिए फंस जाता है। उसकी आर्थिक दशा कभी सुधर नहीं पाती है।

मत्स्य उत्पादन क्षेत्र की एक अन्य समस्या उचित विपणन व्यवस्था का अभाव होना है जिसकी वजह से मछुआरों को उनकी मछलियों की उचित कीमत नहीं मिल पाती है। अच्छी व निम्न श्रेणी की मछलियों की एक साथ बिक्री होने से मछुआरा घाटे में रहता है। मछलियों के श्रेणीकरण व वर्गीकरण का अभी अभाव है।

मत्स्य उद्योग की एक समस्या यह है कि मछली जल्दी सड़ जाती है। इसको शीघ्र बाजार मिलने की बड़ी समस्या है। मछुआरों के द्वारा पकड़ी गई मछलियों में से काफी मछलियां सड़ जाने के कारण उनकी मेहनत व्यर्थ चली जाती है।

मछुआरों द्वारा अभी भी परम्परागत शैली से ही मछली पकड़ने का कार्य किया जाता है, जिससे उनकी उत्पादकता काफी कम है। विश्व के अन्य मत्स्य उत्पादक देशों की तुलना में भारत में मछुआरों की क्षमता बहुत कम है।

भारतीय मछुआरों की वित्तीय स्थिति काफी कमजोर है। वे केवल इतना ही कमा सकते हैं कि अपने परिवार का भरण-पोषण मुश्किल से ही कर पाते हैं। विपरीत परिस्थितियों में मछुआरों की स्थिति काफी दयनीय हो जाती है।

इस तरह अत्याधिक सम्भावनाओं से परिपूर्ण होने के बावजूद उपर्युक्त कारणों से ग्रस्त होने की वजह से मत्स्य उद्योग अभी तक भली भांति फल-फूल नहीं सका है।

मत्स्य उत्पादन संवर्द्धन के सरकारी प्रयास

भारत में मछली पालन के पारम्परिक उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार कृत संकल्प नजर आती है। सरकारी स्तर पर किये गये प्रयासों का मुख्य लक्ष्य यह रहा है कि मछली उत्पादन बढ़ाया जाये। मछली पकड़ने के धन्धे में लगे लोगों की उत्पादन क्षमता बढ़ायी जाए और मछुआरों की आर्थिक एवं सामाजिक दशा में सुधार किया जाये।

भारत सरकार इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्वयं प्रत्यक्ष रूप से तथा राज्य सरकारों के माध्यन से अनेक मात्स्यिकी विकास कार्यक्रम संचालित कर रही है।

मछुआरों को नये तरीकों को अपनाने का प्रशिक्षण देने हेतु मछली उत्पादन विकास एजेन्सियों की स्थापना की गई है। वर्ष 1987 में इन विकास एजेन्सियों की संख्या 184 थी जो 1988 के अंत तक 200 हो गई। इन एजेन्सियों के माध्यम से मछुआरों को मछली पालन के लिए तकनीकी मार्गदर्शन और अन्तः स्थलीय मछलीपालन हेतु नदी, तालाबों और झीलों का विकास किया जाता है। 1987 तक इन एजेन्सियों द्वारा 1.7 लाख मत्स्य उत्पादकों को प्रशिक्षण दिया गया। ये एजेन्सियां गहन मत्स्य कृषि उत्पादक का काम भी करती हैं।

मछली की बढ़ती हुई मांग के साथ पूर्ति का सामंजस्य स्थापित करने के लिए सरकार द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान संस्थान स्थापित किये जा रहे हैं। इनमें प्रमुख है— केन्द्रीय मछली प्रौद्योगिकी संस्थान- मत्स्यपुरी, कोचिन, केन्द्रीय समुद्री मछली पालन अनुसंधान संस्थान, कोचिन, केन्द्रीय मछली पालन शिक्षा संस्थान-बरसोवा, बम्बई तथा केन्द्रीय अंतः स्थलीय मछली पालन अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर (प० बंगाल) प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त एक संस्थान, भारतीय मत्स्य सर्वेक्षण संस्थान समुद्री क्षेत्र में सर्वेक्षण कर रहा है। वह समस्त विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में सर्वेक्षण कार्य करेगा। इन संस्थानों द्वारा बहुसंवर्द्धन मिश्रित मत्स्य पालन आदि के क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धियां प्राप्त की गई हैं।

मत्स्य पोतों के तटों के निर्माण हेतु तकनीशियनों के प्रशिक्षणों हेतु कोचिन में केन्द्रीय मत्स्य नावीय इंजीनियरिंग एवं प्रशिक्षण संस्थान (सिनफेट) है जो मत्स्य पोतों के चालकों तथा तकनीशियनों को तटों की स्थापना के लिए प्रशिक्षण देने के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है।

मत्स्य उत्पादन में वृद्धि के लिए सरकार द्वारा 'आपरेशन ब्लू

रिवॉल्यूशन' का संचालन किया जा रहा है।

कल्याणकारी कार्यक्रम

पारम्परिक मछुआरों के कल्याण को मद्देनजर रखते हुए सरकार द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनाएं शुरू की गई हैं— इनमें प्रमुख हैं— दलीय दुर्घटना बीमा योजना— - जिसमें मछुआरों की मृत्यु अथवा अपंग हो जाने पर उसकी भरपायी की जाती है। सामान्य बीमा निगम की इस योजना में वर्ष 1986-87 में लगभग 5-8 लाख मछुआरों को शामिल किया गया। इस योजना में मजदूरों के प्रीमियम का दायित्व केन्द्र अथवा राज्य सरकारें द्वारा वहन किया जाता है।

राष्ट्रीय कल्याण निधि कार्यक्रम— गरीब मछुआरों को मकान, पीने का पानी, मनोरंजन की सुविधाएं, कर्ज की सुविधाओं को जुटाने के लिए राष्ट्रीय कल्याण निधि की स्थापना की गई।

इनके अलावा अनेक अन्य योजनाएं केन्द्र व राज्य सरकारों के पास विचाराधीन हैं।

मछुआरों को शोषण से मुक्ति प्रदान करने के लिए तथा उचित विपणन व्यवस्था के लिए सरकारी समितियों का गठन किया गया है। इन समितियों के माध्यम से अनिश्चितता व विपरीत परिस्थितियों में मछुआरों को ऋण सुविधा प्रदान की जाती है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार मछुआरों को अधिकाधिक सहकारी समितियों के गठन हेतु प्रोत्साहित कर रही है। जून 1985 तक देश में मछली पालन सहकारी समितियों की संख्या 7,542 थी जिनमें 7,83,026 मछुआरों को सदस्य बनाया गया।

इन सहकारी समितियों के अलावा देश के 10 राज्यों में 70 जिला स्तरीय संघ भी गठित किये गये हैं। अन्य कल्याणकारी योजनाओं के साथ-साथ संघों पर मछलियों के निर्यात व पालन के लिए आवश्यक साज-सामान का आयात करने का दायित्व है। इसके अलावा दुर्घटना बीमा योजना, तालाबों और तालाबों की मछलियों आदि के बीमे करना, मछलियों की बिक्री के लिए बाजार की व्यवस्था करना आदि कार्य संघों द्वारा सम्पादित होते हैं।

मार्च 1984 के बाद राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम द्वारा मछली पालन के विकास का काम अपने हाथों में लिया गया। निगम द्वारा मछली पालन सहकारी समितियों को साज-सामान खरीदने, विपणन और मौलिक सुविधाएं जुटाने व संसाधित करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। सहकारी संघों को तकनीकी सहायता भी इस निगम द्वारा दी जाती है जिससे वे उत्पादन, विपणन और संसाधन में अपनी सदस्य सहकारी समितियों की सहायता कर सकें। निगम समेकित मछली पालन की एप्रोच को भी बढ़ावा दे रहा है।

अंत:स्थलीय मत्स्यपालन क्षेत्र के सातवीं योजना में कृत्रिम तकनीकी अपनाने पर बल दिया गया। इस योजना में राष्ट्रीय विकास निगम ने 300 करोड़ रुपये की एक विशाल जलाशय मत्स्यपालन विकास परियोजना तैयार की है।

इस तरह सरकार के भागीरथी प्रयासों के फलस्वरूप मत्स्य उद्योग नई दिशा की ओर अग्रसर होता जा रहा है। मछली की मांग में नित्यप्रति तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। भविष्य में, मछली के लगभग पशु वसा रहित होने, प्रोटीन के भरपूर रहने और इसकी उत्तम संवर्धन क्षमता होने के कारण, इस उद्योग की लोकप्रियता और महत्ता बढ़ने की बहुत सम्भावना है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि कृषि युग के बाद जल जंतु युग ही आयेगा। अमेरिका में तो प्रगतिशील व दूरदर्शी किसान अपने कृषि फार्मों को मत्स्य फार्मों में बदलने में लगे हैं जो उनके लिए अधिक लाभदायक सिद्ध हो रहे हैं।

यद्यपि सरकार पूरे मनोयोग से मत्स्यपालन को परवान चढ़ाने के लिए प्रयासरत है लेकिन न तो अभी अपेक्षित गति से विकास सम्भव हो पाया है और न ही मछुआरों की दशा में वांछित सुधार हो रहा है। अभी भी वे मध्यस्थों के चंगुल से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके हैं। उनका मध्यस्थों द्वारा शोषण जारी है। सरकार के उक्त प्रयासों के बावजूद कुशल विपणन व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकी है जिसमें तीव्र परिवहन, भंडारण व श्रेणीकरण एवं वर्गीकरण में अभी सुधार व विकास की पर्याप्त गुंजाइश सम्भव है।

सरकार के प्रयासों को देखते हुए यह स्पष्ट दिखने लगा है कि वह दिन दूर नहीं जब भारतीय मत्स्य उद्योग दुनिया में श्रेष्ठता कर लेगा।

क्वाटर नं. 4
पंचायत समिति- राजगढ़ (अलवर) (राज०)
पिन 301408

सार्वजनिक वितरण प्रणाली कितनी सार्थक

□ सुरेश ढाका □

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को कमजोर वर्ग के लिए प्रदान किये जाने वाले राहत कार्यक्रम के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक योजना के रूप में जाना जाता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली से आशय आवश्यक वस्तुओं का समाज में उचित मूल्य पर न्याय पूर्ण वितरण सरकार के निर्देशन एवं नियन्त्रण के अन्तर्गत फुटकर व्यापार के प्रभावशाली प्रबन्ध से है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत आवश्यक वस्तुओं का वितरण या तो किसी सरकारी एजेंसी के द्वारा किया जाता है अथवा सरकारी एजेन्सी की देख-रेख में निजी व्यापारियों द्वारा किया जाता है अर्थात वस्तुओं का वितरण उचित मूल्य की दुकानों, उपभोक्ता सहकारी भण्डारों तथा सहकारी दुकानों के माध्यम से किया जाता है।

वास्तव में देखा जाये तो भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली आवश्यक वस्तुओं के वितरण का कुशल प्रबन्ध एवं मूल्यों में स्थायित्व लाने के साधन के रूप में सरकार के निर्देशन के अन्तर्गत आवश्यक वस्तुओं का फुटकर व्यापार है।

आवश्यकता एवं महत्व

भारत में लगभग 48% जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। जिस राज्य में गरीबी की महामारी फैलती नज़र आती हो उस राज्य में आर्थिक एवं सामाजिक राहत कार्यक्रम की अति आवश्यकता रहती है। दिन दूनी-रात-चौगुनी बढ़ती मंहगाई से कमजोर वर्ग को राहत तथा प्राकृतिक विपदाओं पर काबू पाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने एक सुदृढ़ व प्रभावशाली वितरण प्रणाली की आवश्यकता महसूस की तथा लगभग 6 माह तक केन्द्र, राज्यों के बीच चली रस्साकशी के बीच निर्मित यह योजना नये वर्ष के शुरुआत के साथ लागू की गई। योजना आयोग के अनुसार — ''सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य सामान्य नागरिक का आर्थिक कल्याण करना है।'' हमारी भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी इस प्रणाली के माध्यम से गरीब व कमजोर वर्ग को राहत दिलाने के लिए 20 सूत्री कार्यक्रम में इस योजना की आवश्यकता पर बल दिया था। इसकी आवश्यकता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं से भी समझा जा सकता है।

1. दूर दराज के लोगों, आदिवासियों एवं औद्योगिक श्रमिकों की खाद्य आवश्यकता को पूरी करना एवं खाद्य समस्या पर विजय प्राप्त करना।

2. समाज के कमजोर वर्ग को दिन प्रतिदिन की आवश्यकता की वस्तुए सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराना।

3. मूल्यों में विस्तार वृद्धि को रोक कर मूल्यों में स्थिरता लाना एवं बढ़ती हुई मंहगाई को रोकना।

4. सामाजिक न्याय एवं आर्थिक कुशलता प्राप्त करना।

5. इससे कल्याणकारी समाज की स्थापना में सहायता मिलती है।

पृष्ठभूमि

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उद्गम द्वितीय विश्वयुद्ध से माना जाता है। सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने तक उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुएं सामान्य बाजार से बहुत आसानी से प्राप्त हो जाती थीं। परन्तु सन् 1942 में युद्ध के परिणामस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं की कमी आने लगी तथा आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु लम्बी-लम्बी कतारें लगने लगी तब खाद्यान्नों के मूल्य नियन्त्रण के रूप में सर्व प्रथम सार्वजनिक वितरण प्रणाली को लागू किया गया। आवश्यक वस्तुओं का समुचित वितरण करने के लिए सरकार ने एक पृथक खाद्य विभाग का गठन किया तथा गेहूं के समुचित वितरण हेतु गेहूं आयुक्त की नियुक्ति की गई।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वितीय व्यवस्थित प्रयास के रूप में भारत में राशनिंग व्यवस्था की गई। केन्द्र सरकार के निर्देशानुसार 1944 में राज्य सरकारों ने गेहूं एवं चावल के वितरण हेतु राशनिंग व्यवस्था प्रारम्भ कर दी। यह व्यवस्था मुख्य रूप से खाद्यान्न नीति समिति 1943 की सिफारिशों के आधार पर की गई थी।

मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिए भारत सरकार ने पी०एल० 480 के अन्तर्गत 3 वर्षों तक अमेरिका से गेहूं एवं चावल आयात करके उसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से वितरित करने का निर्णय लिया जो इस प्रणाली को अधिक प्रभावशाली बनाये जाने के लिए उठाया गया कदम था। यद्यपि इस योजना के अन्तर्गत

गेहूं एवं चावल का वितरण राशन कार्डों पर नहीं किया गया परन्तु इनका वितरण उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से ही किया।

सन् 1967-68 में उचित मूल्य की दुकानें योजना का नाम बदलकर 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली' कर दिया गया। परन्तु इसकी कार्य प्रणाली, संगठन में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया गया। तत्पश्चात् भारत में समय-समय पर विभिन्न दलों की सरकारें बनती गईं तथा इस प्रणाली पर कोई विशेष ध्यान न देकर औपचारिकतावश कार्यक्रम घोषित होते गये जैसे 1975 में 'राष्ट्रीय कृषि आयोग' का गठन, 1975 में ही भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा बीस सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा, जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम सार्वजनिक वितरण को महत्वपूर्ण आर्थिक कार्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी तथा 20 अगस्त 1986 को भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी द्वारा बीस सूत्री कार्यक्रम को पुन: संशोधित एवं सुदृढ़ करने की घोषणा जिसके अन्तर्गत उपभोक्ता कल्याण को महत्वपूर्ण माना गया और इस सूत्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ किया गया।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली सम्पूर्ण भारत में लगभग 5,196 खण्डों में कार्य कर रही है जिसमें 1,023 खण्डों की एकीकृत आदिवासी विकास कार्यक्रम (आई.टी.डी.पी) 596 खण्डों की सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.), 143 खण्डों की रेगिस्तान विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी) और 55 खण्डों की चयनित पहाड़ी इलाका योजना के रूप में पहचान की गई है। यह कदम सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और अधिक प्रभावशाली बनाये जाने के लिए उठाया गया है।

दिसम्बर 1991 के उतरार्द्ध में राशन में मिलने वाली अनेक वस्तुओं के दामों में 30% की एक मुश्त वृद्धि के बाद सरकार ने वर्ष 1992 की शुरूआत सार्वजनिक वितरण प्रणाली को 'नवोन्मेष' देने के लिए की है। कहने को सरकारी भाषा में इसे भारतीय राशन व्यवस्था के 'जीर्णोद्धार' की संज्ञा भी दी जा सकती है, परन्तु आम जनता अच्छी तरह से जानती है कि इसी प्रकार के बड़े-बड़े आश्वासनों और वायदों से भरी भारी सरकारी तामझाम वाली ऐसी पूर्ववर्ती योजनाओं का क्या हश्र हुआ है। यह सही है कि केन्द्र में वर्तमान सरकार के कार्यभार संभालने के बाद प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने देश की एक सशक्त, सक्षम, सुदृढ़ व सुनियोजित सार्वजनिक वितरण प्रणाली देने का आश्वासन दिया था। इसी योजना के तहत देश के सूखाग्रस्त, पिछड़े व गरीब तथा पर्वतीय क्षेत्रों में 1698 खण्डों को चुना गया और वहां क्रमशः 11 हजार उचित दर की दुकानें खोली जा रही हैं। इन दुकानों में चावल, गेंहू और मिट्टी के तेल के अलावा चाय, साबुन और माचिस भी उपलब्ध होंगी। योजना के तहत 2.3 लाख टन अनाज भण्डार के लिए एक हजार अतिरिक्त गोदाम बनाये जाने का भी प्रावधान है। इस प्रकार केन्द्र सरकार ने पहली जनवरी को बाड़मेर (राजस्थान) में इस योजना का शुभारम्भ किया है। उचित दर की दुकानों के समुचित संचालन व्यवस्था व निगरानी के लिए ग्रामीण समितियों का भी गठन किया गया है।

योजना के तहत अतिरिक्त 16 करोड़ 11 हजार लोगों को लाभ पहुंचाया जायेगा तथा 24 लाख नये राशन कार्ड जारी किये जायेंगे। इस योजना के तहत कर्नाटक, राजस्थान एवं बिहार सबसे अधिक लाभान्वित होंगे। कर्नाटक में 24 खण्डों के लगभग 2 करोड़ 4 हजार, राजस्थान के 122 खण्डों के एक करोड़ 96 लाख और बिहार के 157 खण्डों के एक करोड़ 63 लाख लोग इस योजना के तहत लाभान्वित होंगे। इस प्रकार काफी वर्षों से गर्दिश में दबी रहने वाली प्रणाली का वर्तमान सरकार द्वारा अच्छी व प्रभावशाली शुरुआत सचमुच जन कल्याण में सहायक साबित होने में सक्षम लगती है।

दोष

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के उद्गम को लगभग पांच दशक से भी अधिक समय हो गया है लेकिन इसकी कार्य कुशलता पर अभी भी संदेह है। अभाव की अर्थव्यवस्था जिन विकृतियों को जन्म देती है, उनमें से एक यह भी है कि सार्वजनिक राहत के लिए शुरु किये गये काम शीघ्र ही भ्रष्टाचार की गिरफ्त में आ जाते हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के साथ भी यही हुआ है। इसके साथ सिफ्त यह है कि यह एक वैकल्पिक या पूरक वितरण प्रणाली है इसके साथ अनुदान जुड़ा हुआ है और यह एक व्यवसाय भी है। इसका कुल मिलाकर नतीजा यह होता है कि जिन्हें राहत पहुंचाने के लिए इसकी परिकल्पना की गई है, वे गौण हो जाते हैं और अफसर तथा व्यापारी मालामाल हो जाते हैं। इसकी मुख्य समस्याएं कई प्रकार की हैं।

1. वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मूलभूत शहर आधारित व्यवस्था है क्योंकि शहरी लोग आधुनिक तन्त्र के अंग हैं और ज्यादा शोरगुल मचा सकते हैं। एक अध्ययन के अनुसार इस पद्धित से 31 से 41 प्रतिशत लाभ शहरी व्यक्तियों को तथा 8 से 19 प्रतिशत लाभ ग्रामीण व्यक्तियों को प्राप्त हुआ है।

2. दूर दराज इलाकों में राशन में दी जाने वाली वस्तुओं की सतत उपलब्धता व परिवहन सुविधाओं का अभाव पाया जाता है।

3. दूरस्थ ग्रामीण इलाकों में सरकारी उचित दर दुकानों के प्रति आम तौर पर ग्रामवासियों में अधिक उत्साह व विश्वास नहीं पाया जाता है तथा गांव में क्रय शक्ति व अधिकार चेतना का अभाव मुख्य रुप से पाया जाता है।

4. सरकारी उचित दर की दुकानों के खिलाफ आम शिकायत समय पर वस्तुओं के उपलब्ध न होने की रहती है। बड़े महानगरों व कस्बों में तो यह शिकायत आम है।

5. घटिया दर्जे की वस्तुओं की बिक्री व बढ़िया और अच्छी किस्मों के चोर बाजार में बेचे जाने की भी खबरें आती रहती हैं।

6. वर्तमान में सरकार ने उचित दर दुकानों के समुचित संचालन, व्यवस्था व निगरानी के लिए ग्रामीण व शहरी समितियों का भी गठन किया गया है लेकिन इसमें भी संदेह है कि ये समितियां भी सही ढंग से कार्य करेंगी।

इस प्रणाली में मिलावट, कम माप एवं तौल, जमाखोरी तथा कालाबाजारी की समस्याएं मुख्य रुप से मिल ही जाती हैं। कभी-कभी सत्ता के दलाल, समाजकंटक व भ्रष्ट अधिकारी परस्पर मिलकर जाली परमिट व राशनकार्ड बना लेते हैं जिससे गरीबों का हक मारा जाता है और इस पद्धति का उद्देश्य पूरा नहीं होता है।

सुझाव

अनेक सरकारी प्रयासों के बावजूद भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली का समुचित उपयोग करने पर आम जनता को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सरकार भी विशेष सफलता प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। इस प्रणाली की अकुशलता को देखा जाये तो ऐसा लगता है कि इसे तुरन्त बंद कर देना चाहिये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विरोध किया था। परन्तु आर्थिक सामाजिक दृष्टि से इसे समाप्त करना वांछनीय नहीं है। अत: हमें इस प्रणाली में आवश्यक सुधार करके इसे प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

1. भारतीय ग्रामीण जनता में इस प्रणाली के प्रति पाये जाने वाले अविश्वास को दूर करने के लिए राज्य सरकारों व ग्रामीण निगरानी समितियों को सतत संघर्ष करना होगा।

2. चूंकि सरकार के सामने यह एक कठोर समस्या है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को कैसे कम सार्वजनिक बनाया जाये फिर भी इस प्रणाली पर पुनर्विचार करते हुए खाते-पीते और खुशहाल वर्ग को इसके दायरे से बाहर निकाल देना चाहिये तथा फर्जी राशन कार्डों की भी जांच की जानी चाहिये।

3. प्रत्येक ग्राम स्तर पर एक कमेटी बनाई जानी चाहिये जो वितरण के सम्बन्ध में जन-चेतना जागृति का कार्यक्रम करे।

4. परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता इस प्रणाली की सफलता में सहायक साबित हो सकती है।

5. सरकार ने देशभर के सूखाग्रस्त, रेगिस्तान, पहाड़ी और आदिवासी इलाकों में यह योजना शुरू तो कर दी है परन्तु सरकार का इतना ही उत्तरदायित्व नहीं है बल्कि इन इलाकों में राशन में दी जाने वाली वस्तुओं की सतत उपलब्धता व समान वितरण के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों को समय समय पर ध्यान भी देना होगा।

6. कालाबाजारी व जमाखोरी रोकने के लिए दुकानदारों को उचित कमीशन देना चाहिये ताकि उनको न्यूनतम जीवन स्तर बनाये रखने का अधिकार प्राप्त हो सके।

7. उचित मूल्य की दुकानों पर आवश्यकता की सभी वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में उचित मूल्य पर, उचित समय पर एवं अच्छी किस्म की वस्तुएं उपलब्ध करानी चाहिये।

8. वास्तव में कमजोर वर्ग को इस प्रणाली के माध्यम से लाभ पहुंचे इसके लिए राज्य सरकारों को चाहिये कि इस प्रणाली की समय समय पर जांच हेतु विशेष समितियों का गठन किया जाये।

निष्कर्ष

सरकार ने आदिवासी, पहाड़ी और सूखाग्रस्त क्षेत्रों में यह योजना शुरू तो की है परन्तु क्या इन इलाकों में इतनी क्रय शक्ति भी पैदा की जायेगी कि यहां के लोग लगातार महंगी होती जा रही चीजें खरीद सकेंगे तथा जो खरीद सकते हैं, क्या उनके लिए पर्याप्त भण्डार नियमित रूप से उपलब्ध रहेगा। पिछले दिनों कुछ आदिवासी

शेष पृष्ठ 23 पर

ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने में जवाहर रोजगार योजना की भूमिका

□ डा० निर्मल कुमार □

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को समाप्त करने, प्रकृति की सामुदायिक परिसम्पत्तियां सृजित करने एवं ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन स्तर को बेहतर बनाने के उद्देश्य से वर्ष 1980-81 से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम एवं वर्ष 1983-84 से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम शुरु किया गया था। रोजगार कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार लाने एवं उन्हें प्रत्येक ग्राम तक पहुंचाने के उद्देश्य से उपयुक्त योजनाओं को समाप्त कर स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने वर्ष 1989-90 से 'जवाहर रोजगार योजना' नामक एक नयी योजना का शुभारम्भ किया ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त बेरोजगारी को दूर कर ग्रामीण विकास को सुदृढ़ किया जा सके।

योजना का उद्देश्य

(क) मुख्य उद्देश्य :– 'जवाहर रोजगार योजना' का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों के बेरोजगार एवं अर्द्ध बेरोजगार व्यक्तियों (महिलाओं सहित) को उपयोगी अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराना है।

(ख) गौण उद्देश्य :– 'जवाहर रोजगार योजना' के गौण उद्देश्य निम्नलिखित हैं :–

1. ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना जो उनकी आर्थिक एवं सामाजिक अवस्थापनाओं के सुदृढ़ीकरण में सहायक हो एवं ग्रामीण गरीबों के आर्थिक स्तर में स्थाई सुधार लाने में उपयोगी हो।

2. ग्रामीण क्षेत्र के जीवन में गुणात्मक सुधार लाना।

योजना के अन्तर्गत लक्षित परिवार :– ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवार योजना के लक्ष्य क्षेत्र में आयेंगे।

लक्षित परिवारों में से कुछ वर्गों के लिए विशेष प्राथमिकताएं :–

लक्षित परिवारों में से कुछ वर्गों के लिए निम्नलिखित विशेष प्राथमिकताएं प्रदान की जाती हैं :

(i) अनुसूचित जाति एवं जन-जाति परिवारों के बेरोजगार एवं अर्ध बेरोजगार सदस्य।

(ii) रोजगार के 30 प्रतिशत अवसर महिलाओं के लिए आरक्षित रखे जाएंगे।

(iii) खानाबदोश जनजातियों के परिवारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु विशेष प्रयास।

योजना की कार्यविधि

योजना के अन्तर्गत किए गए कार्यों का कार्यान्वयन वर्ष में किसी भी समय जब रोजगार सृजन करने की आवश्यकता प्रतीत हो, किया जा सकता है।

जवाहर रोजगार योजना की निम्नलिखित कार्यदायी संस्थायें हैं :–

1. **जिला स्तर :** जिला स्तर पर 'जवाहर रोजगार योजना' में कार्यान्वयन के सम्बन्ध में समन्वय, समीक्षा, पर्यवेक्षण एवं अनुश्रवण आदि की जिम्मेदारी 'जिला ग्राम्य विकास अभिकरण' पर होती है। जिला ग्राम्य विकास अभिकरण प्रदेश शासन को सभी अपेक्षित सूचनाएं एवं मासिक, त्रैमासिक एवं वार्षिक प्रगति विवरण समय से भेजने हेतु उत्तरदायी होता है।

2. **ग्राम सभा स्तर :** ग्राम सभा स्तर पर कार्यक्रम का कार्यान्वयन ग्रामपंचायत द्वारा किया जाता है। योजना के नियोजन एवं कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व ग्राम पंचायत का होता है। ग्राम पंचायतों द्वारा संपादित कार्यों के लिए तकनीकी पर्यवेक्षण का दायित्व विकास खण्ड/जिला ग्राम्य विकास अभिकरण का होता है।

धन आवंटन की प्रक्रिया

'जवाहर रोजगार योजना' में धन आवंटन की निम्नलिखित प्रक्रिया होती है :

1. जिलों से ग्राम पंचायतों को संसाधनों का आवंटन उनकी आबादी के आधार पर किया जाता है। इस परियोजना हेतु 1000 से कम आबादी वाली ग्राम सभाओं की आबादी 1000 मानी जाती है।

2. एक पंचायत से दूसरे पंचायत एवं एक जनपद से दूसरे जनपद को धन का व्यावर्तन अनुमेय नहीं है फिर भी जनपदों में उपलब्ध धनराशि का समय से सदुपयोग हो जाएगा, उन्हें अतिरिक्त धन दिए जाने पर भी विचार किया जा सकता है।

3. एक से अधिक जिले, ग्रामपंचायतें सामान्य रूप से लाभान्वित होने वाले कार्यक्रमों पर संयुक्त रूप से धनराशि व्यय कर सकते

हैं।

भारत सरकार द्वारा सभी राज्य सरकारों एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों हेतु परिव्यय की राशि निर्धारित कर दी गयी है जिसकी अवमुक्ति निम्नलिखित प्रतिबन्धों के अधीन होती है।

(अ) प्रथम किस्त :— प्रथम किस्त में सामाजिक वानिकी एवं इन्दिरा आवास योजना की सम्पूर्ण धनराशि और वार्षिक परिव्यय की 50% धनराशि सम्मिलित होगी जिनको जारी करने हेतु कोई पूर्व प्रतिबन्ध नहीं होता है। किन्तु यदि गत वर्ष की द्वितीय किस्त जारी करते समय कोई प्रतिबन्ध लगाया गया था तो वर्तमान वर्ष की प्रथम किस्त जारी करने से पूर्व उक्त प्रतिबन्ध का अनुपालन सुनिश्चित करना होता है।

(ब) द्वितीय किस्त :— द्वितीय किस्त की स्वीकृति निर्धारित प्रपत्र में निवेदन करने पर दी जाएगी जिसके लिये निम्न प्रतिबन्ध लागू होते हैं:

1. प्रथम किस्त में आबंटित धनराशि एवं पूर्व वर्ष के अवशेष का 50 प्रतिशत परिव्यय कर लिया गया हों।

2. पहली अप्रैल को पिछले वर्ष की अप्रयुक्त अवशेष धन राशि डी०आर०डी०ए० एवं पंचायतों के पास उपलब्ध धनराशि को सम्मिलित करते हुए वर्तमान के परिव्यय 1/4 से अधिक न हो।

3. गत वर्ष में जारी केन्द्रांश के अनुपात में सम्पूर्ण राज्यांश की अवमुक्ति की जा चुकी हो। यदि ऐसा नहीं होता तो राज्यांश में कमी के चार गुने के बराबर द्वितीय किस्त से धनराशि काट ली जाएगी।

4. वर्तमान में केन्द्रांश की प्रथम किस्त के 1/4 के समतुल्य राज्यांश की धनराशि अवमुक्त कर दी गयी हो।

5. गत वर्ष के धन का उपभोग प्रमाण-पत्र पंचायतों से प्राप्त प्रमाण पत्रों के आधार पर भारत सरकार को उपलब्ध करा दिया गया हो।

6. जिला ग्राम्य विकास अभिकरण के अंश की वार्षिक कार्यकारी योजना का अनुमोदन जिला ग्राम्य विकास अभिकरण के शासी निकाय द्वारा किया जा चुका हो।

7. ग्राम पंचायतों को प्रथम किस्त के सापेक्ष उनको देय धनराशि को जिला ग्राम्य विकास अभिकरण द्वारा दिए जाने का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया जाना होगा।

8. समस्त वांछित प्रगति/अनुश्रवण प्रतिवेदन भारत सरकार को उपलब्ध करा दिए हों।

9. गत वर्ष में सामाजिक वानिकी, इन्दिरा आवास योजना एवं अनुसूचित जाति/जन जाति की मात्राकृत धनराशि का सम्पूर्ण उपभोग कर लिया गया हो। कमी की दिशा में अनुपातिक कटौती की जाती है।

10. निम्नलिखित प्रमाण-पत्रों को भी प्रस्तुत करना आवश्यक होता है :-

i) अधूरे पड़े कार्यों को भी प्रस्तुत करना आवश्यक होता है।

ii) दो वर्ष से अधिक पूर्व प्रारम्भ किया गया कोई भी कार्य अधूरा नहीं हो।

iii) केवल स्थाई परिसम्पत्तियां ही सृजित की गई हों।

iv) मार्ग-निर्देशिकाओं में निहित सभी प्रावधानों, प्रतिबन्धों का अनुपालन किया जा रहा हो।

v) समय-समय पर लगाए गए अन्य प्रतिबन्धों का अनुपालन किया जा रहा है।

जिला ग्राम्य विकास अभिकरण स्तर पर परिव्यय का निर्धारण

जिला ग्राम्य विकास अभिकरण स्तर पर परिव्यय का निर्धारण निम्नलिखित रूप में किया जाता है :-

1. जिला ग्राम्य विकास अभिकरण को प्राप्त होने वाले कुल परिव्यय का लगभग 6 प्रतिशत इन्दिरा आवास योजना हेतु निर्धारित किया जाता है। इन्दिरा आवास निर्माण हेतु अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों तथा मुक्त कराए गए बन्धुआ मजदूरों की सघनता वाले क्षेत्रों का चयन जनपद स्तर पर किया जाता है और उक्त निर्धारित धनराशि के व्यय हेतु क्षेत्रवार विभाजन निर्धारित किया जाता है। इन्दिरा आवास योजना हेतु मात्राकृत धनराशि को प्रत्येक विकास खण्डों में आबंटित किया जाता है। इस हेतु विकास खण्डों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की जनसंख्या को दृष्टि में रखकर लक्ष्य निर्धारित किया जाता है।

2. जनपद के परिव्यय में से उपर्युक्तानुसार इन्दिरा आवास योजना हेतु निर्धारण के उपरान्त शेष धन-राशि का न्यूनतम 80 प्रतिशत ग्राम पंचायतों को उनकी जनसंख्या के आधार पर आबंटित किया जाता है लेकिन इसके लिए 1000 से कम जनसंख्या वाली गाँव सभाओं की संख्या 1000 मानी जाती है। जिला ग्राम्य विकास अभिकरणों द्वारा अपने स्तर पर 20 प्रतिशत से अधिक धनराशि नहीं रोकी जा सकती है।

3. उपर्युक्तानुसार जिला ग्राम्य विकास अभिकरण को योजनागंत

प्राप्त होने वाले 20 प्रतिशत संसाधनों में से निम्नलिखित मदों पर व्यय प्रथम सम्भार मानते हुए निम्नवत मात्राकृत किया जाता है :—

i) प्रशासनिक व्यय: राज्य जिला एवं ब्लाक स्तर पर प्रशासनिक कार्यों हेतु 5 प्रतिशत तक धनराशि व्यय की जा सकती है।

ii) रोजगार योजनाओं के अन्तर्गत विभिन्न कार्यों के अनुरक्षण हेतु 10 प्रतिशत धन राशि व्यय की जा सकती है।

पिछले वर्ष की शेष धनराशि एवं जिला स्तर पर उपलब्ध कराई गई उक्त 20 प्रतिशत की धनराशि में से प्रशासनिक एवं अनुरक्षण व्यय हेतु मात्राकृत धनराशि को कम करके शेष धनराशि अधूरे कार्यों को पूरा करने हेतु प्राथमिकता के आधार पर व्यय की जाती है। यदि जिला ग्राम्य विकास अभिकरण के स्तर पर इतनी धनराशि नहीं है कि सभी अधूरे कार्य पूरे कराये जा सकें, तो ऐसे अधूरे कार्यों को सम्बन्धित कार्यदायी विभागों को विभागीय संसाधनों से पूर्ण कराने हेतु हस्तांतरित कर दिया जाता है। अधूरे परन्तु अहस्तांतरित कार्यों के सम्पादन का दायित्व जिला ग्राम्य विकास अभिकरण का होता है। यदि शेष धनराशि शेष कार्यों से अधिक है तो उसका सदुपयोग सृजित परिसम्पत्तियों के सुदृढ़ीकरण के लिए किया जाता है जैसे यदि कहीं सड़क बनाई गई है, लेकिन पुलिया का प्रावधान नहीं किया गया है तो वहाँ पर पुलिया आदि बनाने का कार्य किया जाता है।

संसाधनों का उपयोग निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है —

i) आर्थिक रूप से उत्पादक परिसम्पत्तियों के सृजन हेतु— 35 प्रतिशत।

ii) सामाजिक वानिकी कार्य हेतु — 25 प्रतिशत।

iii) अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों के लिए व्यक्तिगत लाभार्थी कार्यों हेतु— 15 प्रतिशत।

iv) अन्य कार्य जिनमें सड़क निर्माण, भवन निर्माण सम्मिलित हैं— 25 प्रतिशत।

4. प्रशासनिक व्यय हेतु उपर्युक्त निर्धारित धनराशि का उपभोग राज्य/जिला ग्राम्य विकास अभिकरण/विकास खण्ड स्तर पर हिसाब-किताब के रख-रखाव एवं तकनीकी ढाँचे को सुदृढ़ करने हेतु किया जाता है। इस सम्बन्ध में राज्य स्तरीय समन्वयन समिति द्वारा पृथक से मानक निर्धारित करते हुए निर्देश प्रसारित होते हैं।

5. परियोजना की स्वीकृति - जनपद स्तर को प्राप्त होने वाले संसाधनों के अंश की सीमा तक परियोजनाओं का अनुमोदन करने का पूर्ण अधिकार सम्बन्धित जिला ग्राम्य विकास अभिकरण में निहित होता है।

6. जिला ग्राम्य विकास अभिकरणों की वार्षिक कार्यवाही योजना वित्तीय वर्ष में प्राप्त होने वाले संसाधनों के आधार पर तैयार कर ली जाती है और जिला ग्राम्य विकास अभिकरण द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया जाना चाहिए जो वार्षिक कार्यवाही योजना में सम्मिलित न हो।

7. वार्षिक योजना तैयार करते समय नये कार्यों को प्रारम्भ करने की अपेक्षा अधूरे कार्यों को पूरा करने को प्राथमिकता देना चाहिए। जिला ग्राम्य विकास अभिकरणों द्वारा कोई ऐसा कार्य नहीं किया जाता है जो अधिकतम दो वर्ष की अवधि में पूरा न हो सके।

ग्राम पंचायतों को आवंटित किए जाने वाले परिव्यय का मात्राकरण

ग्राम पंचायतों को आवंटित किए जाने वाले परिव्यय का मात्राकरण निम्नलिखित आधार पर होता है :—

1. ग्राम पंचायतों पर तैयार की गयी परियोजनाओं का अनुमोदन विभिन्न सेक्टरों में निम्न प्रकार से किया जाता है :—

i) आर्थिक रूप से उत्पादक परिसम्पत्तियों के सृजन हेतु— 35 प्रतिशत।

ii) सामाजिक वानिकी कार्य हेतु— 35 प्रतिशत।

iii) अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों हेतु व्यक्तिगत लाभार्थी कार्यों हेतु— 15 प्रतिशत।

iv) अन्य कार्य जिनमें सड़क, भवन सम्मिलित हैं— 35 प्रतिशत।

2. ग्राम स्तर पर सेक्टोरल योजनाओं में व्यय—ग्राम पंचायतों को आवंटित परिव्यय में से अनुसूचित जाति, जनजाति को प्रत्यक्ष लाभ पहुंचाने वाले कार्यों के लिए निर्धारित मात्राकरण को प्रत्येक दशा में पूरा किया जाता है। अन्य सेक्टरों के लिए किया गया मात्राकरण मात्र मार्गदर्शक रुप में होता है। इसे जनपद को इकाई मानते हुए पूरा करने की चेष्टा की जाती है।

ग्राम पंचायतों द्वारा तैयार की गयी योजनाओं का अनुमोदन निम्नलिखित रूप में किया जाता है :—

1. ग्राम पंचायतों द्वारा तैयार की गई परियोजनाओं की स्वीकृति के पूर्व विकास खण्ड स्तरीय अधिकारी से उनकी आवश्यकतानुसार तकनीकी परीक्षण कराया जाता है। इस परीक्षण में प्रत्येक प्रकार के कार्यों के लिए निर्धारित मानक को ध्यान में रखते हुए यह सुनिश्चित किया जाता है कि—

i) प्रस्तावित परियोजनाओं में व्यय श्रमांश पर 50 प्रतिशत से कम

न हो।

ii) अनुसूचित जाति/जनजाति के व्यक्तिगत लाभार्थी कार्यो हेतु 15 प्रतिशत धनराशि निर्बल वर्ग ग्रामीण आवासीय योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जाति/जनजाति के लाभार्थियों के आवास के निर्माण हेतु आवंटित की जाती है।

निर्बल वर्ग ग्रामीण आवासीय योजना के अन्तर्गत प्रत्येक ग्राम सभा में कम से कम दो मकान बनाने आवश्यक होते हैं।

जिन योजनाओं में तकनीकी आवश्यकता नहीं है वहाँ विकास खण्ड स्तर से परीक्षण किया जाना आवश्यक नहीं होता है, बल्कि इन योजनाओं में ग्राम पंचायत अधिकारी द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित करते हुए सह-स्वीकृति प्रदान की जाती है।

2. तकनीकी कर्मचारियों की कमी अथवा अन्य कारणों से ग्रामपंचायत को यह छूट होती है कि वह परियोजनाओं की तकनीकी परीक्षा निजी क्षेत्र के तकनीकी अर्हता वाले व्यक्तियों जैसे ओवरसीयर, एकाउन्टेन्ट आदि द्वारा करवाया जा सकता है।

3. ग्राम पंचायतों द्वारा जो कार्य क्रियान्वयन हेतु चयनित किए जाते हैं, उनमें विकास खण्ड अथवा जनपद स्तर का कोई परिवर्तन मान्य नहीं होता है। ग्राम पंचायतें अपने क्षेत्र में किए जाने वाले कार्यों की एकमात्र निर्णयकर्ता होती है।

ग्रामस्तरीय कार्य योजना

''जवाहर रोजगार योजना'' कार्यक्रम में निम्नलिखित ग्रामस्तरीय कार्य योजनाएं होती हैं :—

1. ग्राम पंचायत क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले ग्रामों की विकास योजनाओं के सम्बन्ध में ग्राम पंचायत की बैठक में गम्भीरता से विचार-विमर्श करके वर्ष में किए जाने वाले कार्यों को अन्तिम रूप से चयनित किया जाता है। कार्य योजना तैयार करते समय ग्रामीण निर्बल वर्गों के हितों का ध्यान रखा जाता है एवं अनुसूचित जाति/जनजातियों, महिलाओं और ग्रामीण समुदाय के अन्य कमजोर वर्गों को लाभान्वित करने वाले कार्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है।

2. यद्यपि योजनान्तर्गत लिए जाने वाले कार्यों की लागत के सम्बन्ध में कोई सीमा निर्धारित नहीं है। तथापि सामान्यतया ऐसे कार्य लिए जाने चाहिए जिनका आकार, लागत एवं प्रकार ऐसा हो कि उन्हें स्थानीय स्तर पर कार्यान्वित किया जा सके एवं उनमें उच्चस्तरीय तकनीकी निदेश की आवश्यकता न हो। सामान्यतया न तो बहुत बड़े एवं अधिक लागत के कार्य लिए जाने चाहिए और न ही ऐसे कार्य जिनमें अधिक दक्ष मजदूरों अथवा अधिक सामग्री की आवश्यकता हो।

''जवाहर रोजगार योजना'' कार्यक्रम में ग्राम सभा को आवंटित कुल संसाधनों में से कम से.कम 50 प्रतिशत संसाधन मजदूरी के रूप में व्यय करना आवश्यक होता है। यदि किन्हीं परियोजनाओं में सामग्री अंश के लिए 50 प्रतिशत से अधिक है तो अतिरिक्त सामग्री अंश के लिए जिला प्लान, राज्य प्लान अथवा पंचायतों के अपने संसाधनों से व्यय किया जाता है। यही व्यवस्था जिला स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के उपभोग पर भी लागू होती है।

स्थानीय निर्माण सामग्री की तैयारी (जैसे पत्थरों की कटाई, तुड़ाई आदि) पर मजदूरी का व्यय जो परियोजना का अभिन्न अंग हो, उसे श्रमांश में माना जाता है, किन्तु किसी भी दशा में क्रय की गयी अथवा ठेकेदारी की सामग्री को श्रमांश में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

राष्ट्रीय प्रदर्शन परियोजना
हि.प्र.कृ. वि.वि. विलासपुर
हिमाचल प्रदेश
पिन - 174001

पृष्ठ 19 का शेष

इलाकों में भूखमरी से जो मौतें हुई हैं, उनका सन्देश यह भी है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली विस्तृत करने के अलावा कुछ और भी करने की जरूरत है जिससे सबसे निचले तबके के भारतीय मनुष्य और सस्ते अनाज के बीच की दूरी कम हो सके।

जन विश्वास को जीतने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माथे पर लगे इन काले धब्बों को मिटाना बहुत जरूरी है। केन्द्र सरकार ने भारी आर्थिक दबाव व संसाधन अभाव के बावजूद सक्षम देशव्यापी सार्वजनिक वितरण प्रणाली देने का अपना वायदा निभाया है। अब प्रशासनिक तन्त्र का, खासकर इस व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए गठित ग्रामीण व शहरी समितियों का दायित्व है कि वे इस वायदे को कारगर कर दिखायें अन्यथा अन्य योजनाओं की तरह कहीं यह भी ढपौर शंख साबित नहीं हो जाये। शिक्षित एवं प्रबुद्ध वर्ग का भी यह दायित्व बनता है कि आम नागरिक का ध्यान इन उचित मूल्य की दुकानों की तरफ आकर्षित करने के लिए जनता में जागृति उत्पन्न करें।

साभार योजना

भारत में कृषि आधारित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग

□ प्रो॰ गोपाल लाल □

आज के बदलते आर्थिक परिवेश ने शहरी और ग्रामीण क्षेत्र की प्रत्येक उत्पादन गतिविधि और व्यवसाय को पूर्णतया प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप एक ओर देश की औद्योगिक विकास दर नकारात्मक रही है तो दूसरी ओर कृषि विकास दर शून्य, जबकि सेवा क्षेत्र का विकास 5 प्रतिशत हुआ है। इस प्रकार आर्थिक परिवर्तन के दौर में विकास की असन्तुलन की स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

देश में बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र सीमित और संकुचित बनता जा रहा है। संयुक्त परिवारों का विघटन और कृषि भूमि का विखण्डन जारी है। भूमि के मूल्यों में हो रही लगातार बेहताशा वृद्धि के कारण भी परिवार का हर सदस्य अपने भूस्वामित्व और अधिकार के प्रति जागरूक हो गया है भले ही वह स्वामित्व प्राप्त कर उस भूमि पर खेती करे या नहीं।

वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने सदियों से चले आ रहे परम्परागत कृषि ढांचे में नया मोड़ लाने हेतु यह साहस जुटाया है कि देश में कृषि उद्यमों की स्थापना हो। विश्व के अनेक विकसित देशों ने भी गहनकृषि, नवीन कृषि तकनीक और कृषि अनुसंधान प्रणाली अपना कर कृषि को उद्योग का दर्जा प्रदान कर कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना की है और कृषि व्यावसायीकरण के अनेक लाभ प्राप्त किये जा रहे हैं।

कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कृषि आधारित बड़े उद्योगों की तुलना में लघु कृषि उद्योगों का महत्व बढ़ रहा है इसका प्रमुख कारण है परिशोधित खाद्य सामग्री की विश्वव्यापी मांग। विशेषकर भारतीय युवा समाज में भी परिशोधित खाद्य सामग्री की उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और बड़े शहरों में तो ये खाद्य सामग्री लोकप्रिय बन चुकी है।

कृषि आधारित उद्योग

प्रसंस्करण उद्योगों को कच्चामाल उपलब्ध करवाने में कृषि आधारित उद्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। कृषि आधारित उद्योग खाद्य और अखाद्य दोनों ही प्रकार की सामग्रियां कृषि क्षेत्र से प्राप्त कर प्रसंस्करण उद्योगों को उपलब्ध करवाते रहते हैं। इस प्रकार कृषि आधारित उद्योग पूर्णतः प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित हैं, इस दृष्टि से इन उद्योगों को दो भागों में बांटा जा सकता है :-

1. कृषि आधारित प्रमुख उद्योग

ये वे बड़े उद्योग हैं जो प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित हैं और जिनमें बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है जैसे वस्त्र, चीनी, जूट, चाय काफी, कहवा, चावल, तम्बाकू, रबर, कागज, वनस्पति एवं खाद्य तेल, आटा, मूजी, सोयाबीन, मैदा और दलहन उद्योग आदि।

2. ग्रामीण कृषि सहायक उद्योग

ये वे छोटे उद्योग हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित हैं और इनमें सामान्यतः छोटे पैमाने पर उत्पादन होता है जैसे पशुपालन मछलीपालन, मुर्गीपालन, दुग्ध उत्पादन, चारा उत्पादन, रेशम के कीड़े पालना, पान मसाले, बाग एवं बागवानी, पौध-संरक्षण, मधु-मक्खी पालन और लघुवन-उपज से सम्बन्धित अनेक उद्योग हैं।

खाद्य-प्रसंस्करण उद्योग

कृषि आधारित उद्योगों से प्राप्त खाद्य कच्चे माल को तैयार माल में पेश करने का कार्य खाद्य प्रसंस्करण उद्योग करते हैं। देश में प्राकृतिक खाद्य सामग्री बड़ी मात्रा में उपलब्ध है जो कृत्रिम आहार सामग्री की तुलना में अधिक पौष्टिक एवं उपयोगी है लेकिन आज परिशोधित खाद्य-सामग्री का सेवन व उपभोग आधुनिक फैशन बन गया है। यही कारण है कि देश और विदेशों में हर तैयार खाद्य सामग्री धड़ल्ले से बिक रही है। इसके और भी अनेक कारण हैं, अधिक पारिश्रमिक के कारण थकान, व्यस्त आर्थिक जीवन, काम की भागदौड़ और भड़कते विज्ञापनों ने नई वस्तुओं के उपभोग की ललक हर इन्सान में पैदा कर दी है। आज व्यक्ति के पास भरपेट खाना खाने तक की फुर्सत नहीं, अर्थात वह थोड़े में काम चलाने का आदी होता जा रहा है। जीवन के बजाय समय और धन ही सर्वोपरी हो गये हैं। परिशोधित खाद्य सामग्री में विशेषकर सभी प्रकार के मौसमी फलों (आम, संतरा, सेब, अनानास, मौसमी, आदि) के रस, बेकरी, पनीर, मांस के स्वादिष्ट व्यन्जन, आलू के चिप्स, ठंडे पेय, चाकलेट, मैगी, ग्लुकोज , तरह तरह के आचार, चटनी, मुरब्बे, मसाले शक्ति एवं स्फूर्तिदायक टॉनिक एवं च्यवनप्राश आदि और अनेक प्रकार की डिब्बा बन्द तैयार खाद्य सामग्री जो तुरन्त भोजन के रूप में परोसी जा सके, शामिल हैं। भारत फल उत्पादन में ब्राजील के बाद दूसरा एवं सब्जी उत्पादन में विश्व का सबसे बड़ा देश है इस दृष्टि से सम्पन्नशील होते हुए भी पिछड़ी अवस्था में रहना चिन्तनीय स्थिति है।

ऐसी स्थिति बनी रहने का मूल कारण रहा है देश में सही गुंजाइशों का अभाव, जिसके फलस्वरूप इन खाद्य पदार्थों के भिन्न-भिन्न उत्पादन तैयार नहीं किये जाते और न ही इन उत्पादों की उचित भण्डारण व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। इन पदार्थों के मौसमी उत्पादन समय में ही जब ये पदार्थ प्रचुर मात्रा में सस्ते मिलते है, तब खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों द्वारा इनका भरपूर प्रसंस्करण सम्भव है क्योंकि विदेशों की भांति अब भारत में भी प्रसंस्करण तकनीक विकसित की है।

खाद्य प्रसंस्करण की एक रिपोर्ट के अनुसार

भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के उज्ज्वल भविष्य की कामना की गई और कहा गया है कि यह उद्योग अभी अपनी शिशु अवस्था में है। वर्तमान में देश में उगने वाली सब्जियों और फलों में से एक प्रतिशत से भी कम का प्रसंस्करण किया जाता है। इसी प्रकार के विचार भारतीय खाद्य व्यापार एवं उद्योग परिसंघ के अध्यक्ष ने व्यक्त किये हैं, कि भारत फलो ओर सब्जियों का सर्वाधिक उत्पादन करने वाला देश है और अनेक किस्म की दालों का उत्पादन भी बड़े पैमाने पर करता है इसके आर्थिक क्षेत्रों में समुद्री पैदावार की भी व्यापक संभावनाएं हैं।

भावी आर्थिक लाभ

खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना, विकास और विस्तार से अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं इन उद्योगों के परिशोधित उत्पादन वृद्धि से देशी और विदेशी बढ़ती मांग की आपूर्ति की जा सकेगी। अतिरिक्त परिशोधित उत्पादन का निर्यात सम्भव हो सकेगा जिससे विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है। अन्य राष्ट्रों से प्रतिस्पर्धा करने का अवसर मिलेगा जिससे हमारे उद्योगों की शोधित क्षमता, गुणवत्ता, किस्म सुधार आदि का उचित ध्यान रख कर विश्व बाजार से जुड़ पायेंगे। इस प्रक्रिया के दोहरे लाभ देश को आसानी से सुलभ होंगे एक तो विदेशी कम्पनियों का प्रभुत्व नहीं रह पायेगा दूसरी ओर देश में उपलब्ध कच्चे माल का सदुपयोग देशी कम्पनियों द्वारा ही होने से कम लागत पर अधिकतम उत्पादन सम्भव हो सकेगा।

इन उद्यमों में रोजगार की सम्भावनाएं बढ़ेंगी। लघु उद्यम कर्ताओं को पूंजी निवेश का अवसर मिलेगा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा तो किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के आर्थिक लाभों में वृद्धि होगी। इस प्रकार खाद्य आपूर्ति के साथ साथ देश में आर्थिक प्रगति का भावी मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। यही नहीं देशवासियों को विदेशी वस्तुओं के स्थान पर स्वदेशी उपभोग वस्तुओं के मिलने से स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता में वृद्धि होगी और आर्थिक पराधीनता से मुक्त रह पायेंगें।

देश के आम बजट में सरकार द्वारा भले ही कृषि एवं ग्रामीण विकास क्षेत्र में नई परियोजना प्रस्तुत नहीं की गई हो लेकिन कृषि उद्यमों को बढ़ावा देने के लिए 'लघु कृषक व्यवसाय संघ' की स्थापना की गई है, जो विशेषकर छोटे किसानों के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होगी।

आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध
राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर) (राज०)

कहानी

गांव की देवी

□ विजय कुमार शर्मा □

उस दिन आकाश में काले बादलों के मंडराने के साथ-साथ बिजली भी चमक रही थी। चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। वातावरण काफी डरावना-सा लग रहा था। सुमन की माँ उदास-सी दरवाजे के साथ खड़ी थी। उसका मन अजीब से भय के कारण बैठा जा रहा था। मन में कई प्रकार की शंकायें हलचल मचा रही थीं। देखते-देखते ही रात के आठ बज गये परन्तु सुमन नहीं आई।

आठ बजने के बाद सुमन की मां ने मोहन से कहा— बेटा, सुमन चार बजे की घर से गई है लेकिन अभी तक आई नहीं तू जाकर पता तो कर किसके घर बैठी है। लालटेन ले जाना बाहर बहुत अंधेरा है।

मोहन बोला — मां, सुमन दीदी तो झुमन मोची के घर बैठी है।

"तुझे कैसे मालूम।"

"खेत से आते समय मैंने देखा था।"

"पर झुमन मोची के घर उसका क्या काम ?

मोहन हंसता हुआ बोला — मां, दीदी नई-नई डाक्टर बनी है न झुमन मोची के लड़के को कई दिनों से बुखार आ रहा है। किसी डाक्टर या वैद्य के पास तो गया नहीं। अपना ही देशी इलाज कर रहा है। सुना है कि तुलसी के पत्तों का काढ़ा पिला रहा है। वहीं बैठी-बैठी अपनी डाक्टरी झाड़ रही होगी। तभी सुमन ने कमरे में प्रवेश किया। उसकी मां ने कड़क कर कहा — बेटी, तू शहर में रहकर नौकरी क्या करने लगी कि तूने तो अपना धर्म-कर्म सब कुछ भुला दिया। तू झुमन मोची के घर क्यों बैठी थी। अपने पिताजी की इज्जत का कुछ तो ख्याल कर। ये शहर नहीं, गांव है।

मां। उस का लड़का बहुत बीमार है। वैसे तो मैं दवाई दे आई हूं, परन्तु भगवान ही रक्षक है। काफी सीरियस केस है। यदि किसी तरह से रात काट गया तो शायद मैं उसकी जान बचाने में सफल हो जाउंगी।

"लेकिन तू तो कल अपनी डॅयूटी पर चली जायेगी न"

अब नहीं जाऊंगी मां। कभी नहीं।"

क्यों ? नौकरी छोड़ देगी ? घर में चार पैसे आते क्या बुरे लग रहे हैं ?

मां, तुम्हें पैसों की क्या चिन्ता है ? भगवान की कृपा से मेरे दोनों भाई नौकरी कर रहे हैं। पिताजी भी दुकान में काफी कमा लेते हैं। यदि मैं न भी कमाऊँ तो क्या हर्ज है ?

सुमन की मां कुछ सोचते हुए बोली — बेटी, पहले तो तुझे नौकरी की धुन लगी हुई थी। तब तो दिन-रात एक ही रटना थी कि मैं डाक्टर बनूंगी। हजारों रुपये तुम्हारी पढ़ाई पर खर्च हुए। बड़ी मुश्किल से नौकरी मिली। अब एक दम तुझे नौकरी से घृणा हो गई, आखिर क्यों ?

सुमन बोली—मां। शहर के लोगों के लिए डाक्टरों की कमी नहीं। शहर में तो अच्छे-से-अच्छे डाक्टर मिल जाते हैं लेकिन हमारे गांव में तो किसी को नब्ज देखना भी नहीं आता है। यदि कोई बीमार हो जाये तो यहां से सात-आठ किलोमीटर दूर जाकर किसी गांव से डाक्टर या वैद्य को लाना पड़ता है जिनके पास पैसे हैं वे तो ऐसा भी कर लेते हैं, लेकिन जो बिचारे दवाई खरीदने के लिये भी असमर्थ हैं वे डाक्टर या वैद्य की फीस कहां से देंगे ? झुमन मोची की बातें सुनकर मुझे रोना आ गया। वह कह रहा था उसका लड़का कई दिनों से बीमार है, परन्तु किसी वैद्य या डाक्टर को बुलाने में असमर्थ हूं। उनकी फीस कहां से दूं ? दो वक्त की रोटी ही मुश्किल से चल रही है। भगवान के भरोसे पर ही बैठा हूं। तभी मुझे ऐसा लगा कि मेरे भीतर से कोई कह रहा है। "तू तो शहर में रहकर धनी लोगों का इलाज करके बैंक बैलन्स बढ़ा। तेरे गांव वाले मरें या जियें, तुझे क्या?"

सुमन की मां मूक दृष्टि से सुमन को देख रही थी।

कुछ क्षण रुककर फिर बोली — मां। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि गांव में ही रहकर गांव वालों की सेवा करुंगी। आने-जाने की मैं किसी से फीस नहीं लूंगी। केवल दवाई के पैसे ही लिया करुंगी। जो बहुत गरीब है उनसे दवाई के पैसे भी नहीं लूंगी।

सुमन की मां बोली — बेटी, जैसी तुम्हारी मरजी है, वैसा करो। मैं तुम्हारे काम में दखल नहीं दूंगी। तुमने ठीक ही सोचा है। गांव वालों का भी तुम पर हक है। वे भी तुम से कुछ उम्मीदें

रखते हैं।

दूसरे दिन सुबह ही सुमन झुमन मोची के घर गई। उसके लड़के को देखा और फिर दवाई देते हुए बोली — अब चिन्ता की बात नहीं। यह शीघ्र ही ठीक हो जायेगा। सुमन के मुंह से इतना सुनते ही झुमन और उसकी पत्नी ने मन-ही-मन सुमन को धन्यवाद दिया और भगवान से सुमन की दीर्घायु की प्रार्थना की।

जब सुमन घर पहुंची तो काफी उदास एवं परेशान थी। उसकी उदासी एवं परेशानी को देख कर उसकी मां समझ गई कि झुमन का लड़का ..... कांपते हुए स्वर में उसने पूछ ही लिया — बेटी झुमन के लड़के की कैसी तबीयत है ?

अब वह ठीक है, मां जल्दी ही स्वस्थ हो जायेगा। अब चिन्ता की कोई बात नहीं है।

सुमन गंभीर स्वर में बोली — मां आज झुमन का लड़का बच गया लेकिन हमारे गांव, ऐसे कई झुमन हैं जो अपनी गरीबी व अज्ञानता के कारण विवश एवं लाचार होंगे। मां मुझे उनके लिये कुछ करना ही होगा।

मां मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही कि भगवान सुमन को हिम्मत एवं धैर्य दे और उसकी मेहनत को सफल बनाए ताकि गांव का उद्धार हो सके। गांव में क्लिनिक खोलने के लिए सुमन के परिवार वालों ने उसकी सहायता की और उस क्लिनिक को चलाने में सुमन ने रात दिन एक कर दिया और सुमन की मेहनत रंग लाई और कुछ ही दिनों के बाद गांव का रूप ही बदल गया। गांव के लोग सुमन को सुमन नहीं, देवी कहने लगे। कुछ बूढ़े लोग कहते — भगवान ने हमारे गांव का सुधार करने के लिए सुमन के रूप में देवी को भेजा है। ये तो हमारे गांव की देवी है। इसी की कृपा से आज गांव का ढांचा ही बदल गया है।

सब के मुंह से सुमन की प्रशंसा सुनकर सुमन की मां को बेहद प्रसन्नता होती और वह मन-ही-मन सोचती कि सुमन की पढ़ाई पर जो हजारों रुपये खर्च किये हैं, वे बेकार नहीं गये।

1272 मल्टी सटोरी, तिमारपुर
दिल्ली-110007

कविता

वृक्ष मानव

□ राजेश हजेला □

वृक्ष,
हमारी संस्कृति एवं चेतना के,
अनन्य घटक तथा,
जीवन और प्राणों के संवाहक हैं।
परन्तु,
अज्ञानी मानव,
स्वार्थ की कुल्हाड़ी से,
उनका अस्तित्व मिटाने में लगे हैं।
यदि हम सुनना चाहते हैं —
हरी हरी पत्तियों के बीच
बहते हुए समीर का स्वर
कल कल करती नदियों में
बहते हुए निर्मल जल का समवेत संगीत
तो हमें कम करना होगा—
अपने लालच और स्वार्थ को
तथा
जाग्रत करनी होगी
सृष्टिपरक मानवीय चेतना।
पौधों को सौंपना होगा- —
उनका पूर्ण भविष्य।
उनकी वृक्षों में परिणितियाँ,
बनेंगी मानव जीवन की सम्पूरक।

4/10 तकिया नशरत शाह
फर्रूखाबाद (उ.प्र.)
209625

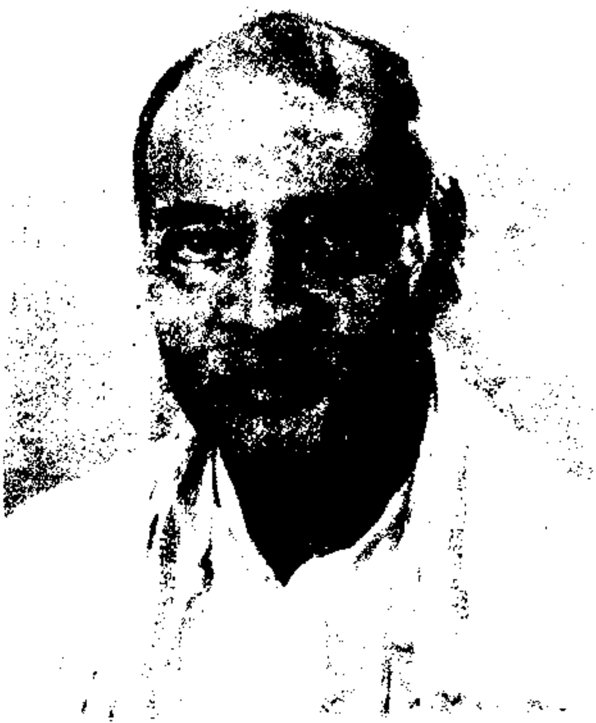

"अभी तक सार्वजनिक वितरण प्रणाली चल रही थी उसमें कुछ खामियां, कुछ कमियां, कुछ त्रुटियां थीं। मुझे बताया गया कि अनाज भेजा तो जाता है लेकिन बीच में कहीं गायब हो जाता है। कई लम्बे हाथ वाले लोग इसे उठा लेते हैं। इसका कारण यही है कि जो प्रणाली हम बनाते हैं उसको ईमानदारी से कार्यान्वित करते नहीं हैं। ऐसे लोग हैं .....बीच में जो किसी दूसरी तरफ चला देते हैं। एक तरफ सरकार का खर्चा भी हो जाता है और दूसरी तरफ जिनको कुछ मिलना चाहिए, उनको कुछ मिल नहीं पाता। तो हमने देखा.... कि इसे पहले ठीक कर लेना चाहिए और इसे उन इलाकों में शुरू करना चाहिए जहां सबसे गरीब लोग, पिछड़े हुए बसते हों। इनको हमने चुना है। रेगिस्तानी इलाके, पहाड़ी इलाके को। और दूसरे पिछड़े हुए इलाके। सबको मिलाकर सत्रह सौ ब्लाक हमने चुने ....राज्य सरकारों के सलाह-मश्विरे से .. और आज सारे सत्रह सौ ब्लाकों में यह कार्यक्रम शुरू हो रहा है।..... हम कोई भी कार्यक्रम बनायें दिल्ली में बैठकर .... उसको कार्यान्वित करना तो राज्य सरकार के हाथ में है। ...मैं पहले से ही कहता आ रहा हूं कि केन्द्र सरकार और राज्य सरकार कोई अलग-अलग नहीं हैं। एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। लोगों तक जो पहुंचाना है, जो लाभ उनको पहुंचाना है; उसमें हम दोनों का साझा है। पैसा केन्द्र सरकार का भी आपका है, जो राज्य सरकार के पास है वो भी आपका है। ... पैसा जनता का है और हमको उसी जनता को फायदा पहुंचाने के लिए काम करना है....."

पी.वी.नरसिंह राव

प्रधानमंत्री

(बाड़मेर, राजस्थान में 1 जनवरी 1992 को एक आम सभा में दिए गए उनके भाषण के अंश)

ग्रामीण बाजारों में ''चलती फिरती उपभोक्ता दुकानों'' की अपरिहार्यता

□ ओम प्रकाश तोषनीवाल □

भारत गांवों का देश है। आज भी मोटे तौर पर देश की तीन-चौथाई आबादी इन पौने छह लाख गांवों में ही निवास करती है। इसी दृष्टि से देश की आर्थिक प्रगति का अर्थ वस्तुत: इन गांवों की प्रगति से ही लिया जाना चाहिए। लगभग 40 वर्षों के आयोजन के बाद अब यह स्पष्ट विदित हो चला है कि हमारा समूचा आयोजन नगर प्रधान ही रहा है। यों गांवों में परिवर्तन आया है, लेकिन वह न तो इतना उल्लेखनीय है जैसाकि होना चाहिए था और न उतना स्वास्थ्यवर्द्धक ही। उसी का यह परिणाम है कि गांवों की आधी से अधिक जनसंख्या आज भी गरीबी रेखा के नीचे जी रही है। वैसे भी नगरों की तुलना में ग्रामवासियों के आय के साधन पर्याप्त संकुचित हैं, तिस पर भी उन साधनों का विनियोजन व्यय की विविध मदों पर उचित प्रकार से नहीं हो पाता। इसके कई कारण हैं, जिनमें से निम्नलिखित को उल्लेखनीय कहा जायेगा :

1. ग्रामीणों का अशिक्षित होना, विशेषकर महिलाओं का।
2. ग्रामीणों को आज भी ''विपणन प्रवृत'' नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे जन्मजात व्यापारी नहीं होते।
3. गांवों में समुन्नत-व्यवस्थित बाजारों का अभाव।
4. शहरी बाजारों पर उनकी अत्याधिक निर्भरता।
5. एक ओर ग्रामीणों की सादगी और सीधापन और दूसरी ओर नगर के व्यापारियों की चाटुकारिता और चालाकपन।

सीधे तौर पर हम यह सोचें कि क्या हमारे ग्रामीण भाइयों को उनके द्वारा किये गये व्ययों से सही उपयोगिता मिल पाती है। सचाई यह है कि अपने सीधेपन, अशिक्षित एवं संतोषी प्रवृत्ति तथा भाग्यवादिता में आस्था रखने के कारण वह अर्थशास्त्रीय बाजार में सदैव से पिटता आया है। महान आश्चर्य तो तब होगा जब यह विश्वास करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि देश के स्वतन्त्र होने के बाद क्रय के मोर्चे पर, स्थिति में सुधार की अपेक्षा बिगाड़ ही अधिक आया है। कुल मिलाकर विपणन के विक्रय एवं क्रय दोनों ही क्षेत्रों में सदैव उसका शोषण ही हुआ है। बात चाहे कृषि उत्पादन को बेचने की हो अथवा ग्रामीण धन्धों में बने अन्य सामान की। क्या उसे कभी अपने परिश्रम का उचित पैसा मिल सका है ? उसे हमेशा यह शिकायत रही है कि उसे उसकी उपज और उत्पाद का उचित मूल्य बाजार में नहीं मिलता है। बीच के मध्यस्थ उसकी आय का एक बड़ा भाग हड़प लेते हैं। इस बात में सचाई पूरी है, यों इस ओर स्थिति में विगत 40 वर्षों में काफी सुधार हुआ भी है। यह तो रही उस उत्पादन की बात जिनका वह विक्रय करता है। लेकिन स्थिति की गम्भीरता उन वस्तुओं के साथ है, जिन्हें वह क्रय करता है। ऐसी सभी वस्तुओं को दो भागों में बांटकर समस्या का अध्ययन सुचारू रूप से किया जा सकता है।

'आदान' जो कृषि के लिए अथवा उद्योग धन्धों के लिए क्रय करने होते हैं।

विविध प्रकार की दैनिक उपभोग वस्तुएं एवं विवाह शादी जैसे अवसरों पर की जानी वाली खरीद।

जहां तक पहले प्रकार अर्थात विविध प्रकार के 'आदानों' को क्रय किये जाने की बात है, इस ओर सहकारी समितियों, खादी ग्रामोद्योग आयोग, राज्य सरकारों और ऐसे ही विशिष्ट संगठनों का ध्यान गया है। उदाहरण के लिए कृषि हेतु उत्तम बीजों, खादों, कीटनाशक रसायनों आदि की उपलब्धि, किसानों को उचित कीमत पर और कई बार अनुदान के साथ, किये जाने के प्रयास किये जाते रहे हैं। उद्योगों के क्षेत्र में ग्रामीण जुलाहों को नियन्त्रित मूल्यों पर सूत उपलब्ध किये जाने की बात भी है। ऐसी अन्य दूसरी बातों का भी उल्लेख किया जा सकता है जो 'आदानों' को क्रय करने की दिशा में, उनके हित में रही हैं। यहां भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उनकी आवश्यकताओं को देखते हुए ये प्रयास लघु ही कहे जायेंगे।

प्रत्येक ग्रामीण उत्पादनकर्ता व उपभोक्ता दोनों ही है। ऊपर जो

कुछ वर्णन किया उससे विदित होता है कि उत्पादनकर्ता के रूप में उसकी समस्याओं को शासन ने समझा है। उनके समाधान के लिए प्रयास भी किये गये हैं और निरन्तर किये भी जा रहे हैं, यों अभी बहुत कुछ करना बाकी है। लेकिन उपभोक्ता के रूप में उसकी समस्याओं की ओर शासन का रूख अभी उपेक्षित ही रहा है। 'गांवों के लिए मिट्टी का तेल और चीनी' लिखे श्यामपट कस्बों में भी देखे जा सकते हैं। लेकिन इनसे हमारा ग्रामीण कितना लाभान्वित होता है, क्या कभी हमने इस ओर भी आवश्यक ध्यान दिया है? वैसे भी लाखों गांवों के लिए अभी ऐसी व्यवस्था भी कहां हैं? तेल और चीनी-चावल के अतिरिक्त दैनिक जीवन उपभोग की अन्य बीसियों वस्तुओं की उसे और भी तो आवश्यता पड़ती है, जिन्हें वह प्रतिकूल स्थल एवं प्रतिकूल शर्तों के साथ क्रय करता है। उसके द्वारा चाही जाने वाली ऐसी सभी उपभोक्ता सामग्री इस प्रकार है :— मिर्च मसाले, कपड़ा, बर्तन, दवाईयां, साबुन, डिर्टजेन्ट चाय, बूरा आदि।

ग्रामीण अपनी इन वस्तुओं को कहां से क्रय करता है ऐसे सभी स्थलों को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है :

(1) गांव के बनिये की दुकान, यदि उन पर उसकी आवश्यकता का सामान मिलता हो।

(2) गांव में लगने वाले साप्ताहिक बाजार या पैंठ, यदि ऐसे बाजार या पैंठ वहां लगती हों।

(3) आसपास के कस्बों में जाकर खरीदारी, यदि वहां जाना सुगम हो।

(4) स्थानीय क्षेत्रों में लगने वाले वार्षिक मेले, यदि इस प्रकार के कोई मेले इस क्षेत्र में लगते हों।

इन सभी स्थानों पर ग्रामीणों के हिस्से जो माल आता है वह गुणवत्ता की दृष्टि से मानक स्तर में काफी नीचे होता है। इतना ही नहीं जहां कहीं सम्भव हो सकता है उनमें मिलावट का अंश भी भरपूर रहता है। मिलावट भी ऐसी जो स्वास्थ्य की दृष्टि से उपभोक्ताओं के लिए पर्याप्त हानिकर होती है। बात चाहे मिर्च-मसालों की हो, या चाय अथवा खाद्यान्न तेलों की, सामान्यत: सभी में मिलावट मिलेगी। इतना ही नहीं नकली दवाओं की खपत भी इन्हीं ग्रामीण बाजारों में सबसे अधिक होती है। शहरों और कस्बों में ऐसे विक्रेताओं के सरकारी निरीक्षक द्वारा माल के सैम्पिल भरते आपने सुना ही नहीं देखा भी होगा। कितनी ही बार ये व्यापारी कानून की लेपट में आ भी जाते हैं। लेकिन गांव का बनिया कैसा सामान बेच रहा है, इस ओर शासन कितना सचेत है यह बात किसी से छिपी नहीं है। हो सकता है शासन की कुछ प्रशासनिक मजबूरी हों, पर ग्रामीणों को भी मिलावट रहित वस्तुएं मिलें क्या यह सरकार का दायित्व नहीं है ?

गांव की दुकान हो या साप्ताहिक पैंठ अथवा मेले ठेले, इन सभी स्थानों पर ग्रामीणों को अपनी उपभोक्ता सामग्री का अधिक पैसा ही देना पड़ता है। ऐसी वस्तुओं में कुछ चीजों के मूल्यों पर भले ही सरकारी नियंत्रण हो, या फिर ऐसी कुछ वस्तु का जो दाम ग्रामीण ग्राहक से लेना है सो लेना है। आखिर उसे भय भी भला है किसका ? लगता है नियन्त्रणों से जैसे वह मुक्त हो ग्राहक — उसकी ओर से भी वह भयमुक्त ही है। कारण, उसका ग्राहक अनपढ़, सीधा है और इससे भी ऊपर उसके लिए सबसे बड़ा अभिशाप तो उसकी गरीबी है। ऐसे में वह एक अच्छा उपभोक्ता खरीदार भला बन ही कैसे सकता है। यही कारण है कि ग्रामीण उपभोक्ताओं में, अपवाद की बात छोड़ दीजिये, न मोलतौल करने की इच्छा होती है और न शक्ति ही। इसके साथ साथ ग्रामीण उपभोक्ताओं के पास अपने उपभोग की दैनिक सामग्री खरीदने के लिए और कोई विकल्प भी तो नहीं है। नगरों और कस्बों में व्याप्त प्रतिस्पर्द्धा के सिद्धान्त के लिए अभी ग्रामीण बाजारों में कोई स्थान नहीं है।

वस्तुओं की 'गुणवत्ता' एवं 'मूल्य' से सम्बन्धित समस्याओं के अतिरिक्त ग्रामीण उपभोक्ताओं की एक तीसरी भी समस्या है कम नाप-तोल की। सरकारी दुकानें हों अथवा निजी दुकानें, सभी जगह उपभोक्ताओं की एक आम शिकायत वस्तुओं के कम नापतोल की रहती है।

अब बात कस्बों और नगरों की आती है। प्राय: यह समझा जा सकता है कि ग्रामीण उपभोक्ताओं को अपनी खरीदारी के लिए इन कस्बों में उन समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता, जिन्हें वे गांवों में झेलते हैं। पर दुखद आश्चर्य तो यह है कि इन नगरों में आकर भी उसकी स्थिति कुछ अधिक अच्छी नहीं है। इसका एक मात्र कारण, जैसाकि हमने पहले भी उल्लेख किया उसकी अशिक्षा, सीधापन और गरीबी ही है। वैसे गांव के पढ़े-लिखे और सम्पन्नशाली युवाओं में भी नगरों में सामान की खरीदारी के बारे में वह प्रखरता

नहीं कि वे नगर विक्रेताओं से खरीदे जाने वाले माल की गुणवत्ता, मूल्य एवं तौल के बारे में किसी प्रकार का मोर्चा संभाल सकें। हमारा अनुभव यह है कि शहर की ठगाई ग्रामों की ठगाई से अधिक भयंकर है। गांवों में विक्रेता अपने क्रेताओं के सामने तो रहता है, अतः कुछ शर्म-लिहाज उसे अपने क्रेताओं के लिए निभानी ही पड़ती है। लेकिन नगरों में विक्रेताओं के लिए अपने ग्रामीण ग्राहकों के साथ वैसी बात नहीं रहती। ऐसी स्थिति में वह उन्हें किसी भी रूप में और किसी भी सीमा तक माल के साथ ठग सकता है। नाप-तौल में इस सफाई के साथ हाथ साफ किया जाता है कि बेचारा गरीब भांप भी नहीं सकता। कीमतों के बारे में निर्धारित उचित कीमत से कुछ कम ही बताकर उसे माल खरीदने के लिए पटाया जाता है लेकिन बाद में इस कमी की, नाप-तौल की गड़बड़ी और मूल्य वृद्धि के द्वारा भरपाई कर ली जाती है। ऐसे सैकड़ों उदाहरणों की विस्तृत व्याख्या दी जा सकती है।

समस्या समाधान

इस समूचे विश्लेषण का सारगर्भित सारांश तो यह है कि ग्रामीण उपभोक्ताओं को इस दुखद स्थिति से कैसे उबारा जाये ताकि उसे अपने दैनिक उपभोग की सभी वस्तुएं उचित स्थान, उचित समय, उचित मूल्य एवं उचित गुणवत्ता के साथ उपलब्ध हो सकें। इसके लिए पहली आवश्यकता यह है कि ग्रामीण लोगों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनकी निर्भरता को नगरों व कस्बों पर से कम किया जाये। साथ ही गांवों में इन वस्तुओं की प्राप्ति की कोई ऐसी वैकल्पिक व्यवस्था की जाये जहां उन्हें विक्रेताओं के शोषण से बचाया जा सके। इस दिशा में 'चलती फिरती दुकानें' बेजोड़ सिद्ध हो सकती हैं। ये दुकानें सहकारी समितियों द्वारा संचालित हो सकती हैं अथवा सरकारी नियंत्रण में अन्य किसी प्राधिकरण द्वारा। इन दुकानों में काम करने वाले लोग वहीं के गांवों में से चुने जाने चाहिए। चलती फिरती ये दुकानें ग्रामीण लोगों के दैनिक उपभोग की वस्तुएं अपने पास रखेंगी तथा सप्ताह में निर्धारित किये गये दो दिन कुछ निश्चित गांवों में जायेंगी। प्रारम्भ में प्रयोग के हेतु कुछ सीमित क्षेत्रों में ही इस योजना को आरम्भ किया जायेगा और बाद में चलकर धीरे-धीरे एक निर्धारित समय में चलती फिरती दुकानों की यह योजना समूचे देश में ग्रामीण अंचलों पर आच्छादित हो जायेगी। मोटे तौर पर इन दुकानों का स्वरुप कुछ कुछ वैसा ही होगा जैसाकि आज कल दिल्ली राज्य में चल रही हैं। चलती फिरती दुकानों की इस योजना से जो लाभ प्राप्त होंगे उन्हें संक्षेप में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

1. ये दुकानें ग्रामीणों की अपनी होंगी। इनमें काम करने वाले लोग उन्हीं के अपने युवा होंगे। ऐसी स्थिति में इन दुकानों के साथ उनका लगाव व आकर्षण बढ़ेगा।
2. इन दुकानों पर सामान उचित मूल्य पर मिल सकेगा।
3. दुकानों पर मिलने वाले सामान में किसी प्रकार की कोई मिलावट नहीं होगी, अतः गुणवत्ता की दृष्टि से भी यह सामान अच्छा रहेगा।
4. ग्रामीण लोग महाजन के चंगुल एवं शहरी विक्रेताओं के शोषण से बच सकेंगे।
5. ग्रामीणों की फिजूल खर्ची पर भी अंकुश रहेगा।
6. इसमें ग्रामीण युवाओं को रोजगार मिल सकेगा।
7. सुविधाजनक रहने के साथ-साथ चलती फिरती दुकानों की यह योजना ग्रामीणों के समय की बचत भी करेगी।
8. इस योजना का एक लाभ ग्रामीणों के स्वास्थ्य के साथ जुड़ा है। गुणवत्ता चीजों के प्रयोग से अनेकों बीमारियों से बचा जा सकेगा।
9. इससे शहरों की भीड़ भी कम होगी।
10. इसके द्वारा सहकारिता की भावना बढ़ेगी।
11. अन्त में इससे लोकतन्त्र मजबूत बनेगा।

51, महेश्वरी गंज, हापुड़
(उ०प्र०)

मरूभूमि विकास कार्यक्रम-समस्याएं एवं समाधान

□ डॉ० रूड़मल यादव □

मरू विकास कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा राजस्थान राज्य में वर्ष 1977-78 से केन्द्र प्रवर्तित योजना के रूप में शत-प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के आधार पर प्रारंभ किया गया। वर्ष 1979-80 से इस कार्यक्रम के अंतर्गत व्यय का वहन केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा 1:1 के आधार पर किये जाने का प्रावधान रखा गया। वर्ष 1985-86 से केन्द्र सरकार द्वारा पुनः इस कार्यक्रम को शत-प्रतिशत सहायता दी जाने लगी।

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य मरूस्थल के प्रसार को रोकना, मरूस्थलीय क्षेत्र में पर्यावरण को सुधारना, मरूस्थली क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की आय, रोजगार तथा उत्पादन बढ़ाने की परिस्थितियां उत्पन्न करना, मरूस्थलीय क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों का आर्थिक विकास के लिये अधिकतम उपयोग करना इत्यादि।

यह कार्यक्रम राज्य के 11 मरूस्थलीय जिलों के 85 विकास खंडों में क्रियान्वित किया जा रहा है। ये जिले हैं:— जोधपुर, नागौर, माली, सीकर, झुनझुनू, जैसलमेर, गंगानगर, जालौर, बाड़मेर, बीकानेर तथा चुरू।

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने भी राजस्थान के इन 11 जिलों को मरूस्थलीय माना है। इनमें राज्य के क्षेत्रफल का 60 प्रतिशत तथा जनसंख्या का 40 प्रतिशत भाग शामिल है। इन 11 जिलों की लगभग दो लाख नौ हजार वर्ग किलोमीटर भूमि अकाल से निरंतर प्रभावित रही है। इन 11 जिलों में दूर दूर तक फैला मरूस्थल या मरूभूमि, जहां ग्रीष्म ऋतु में तपती धरती, तपता आसमान, तपते इंसान व तपते पशु - सब नियति के जाल में फंसे हैं, जिससे छुटकारा पाना कठिन है, क्योंकि इन मरूस्थलीय जिलों में सर्वत्र बालू के टीले हैं, वर्षा कम व अनियमित होती है, धरती के नीचे व सतह पर जल का नितांत अभाव है, पानी के भाप बनकर उड़ जाने की रफ्तार तेज है, ग्रीष्म ऋतु में धूल भरी आंधियां चलती है एवंम बालू मिट्टी का हवा से कटाव होता रहता है, जिससे रेगिस्तान तेज गति से आगे बढ़ता जा रहा है।

राजस्थान का एक बहुत बड़ा भाग मरूस्थल है। ऐसे मरुस्थल के विकास को ध्यान में रखते हुये सरकार द्वारा 'मरू विकास कार्यक्रम योजना' का निर्माण किया गया है। यह कार्यक्रम जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के माध्यम से संचालित किया जा रहा है।

सरकार द्वारा मरूभूमि विकास के लिये किये गये कार्य

मरूभूमि विकास कार्यक्रम के आरंभ से छठी योजना तक इस कार्यक्रम के अंतर्गत 125.90 करोड़ रुपये की धनराशि खर्च की गई। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम के अंतर्गत 146.48 करोड़ रुपये व्यय किये गये, जिसमें निम्न कार्य सम्पादित किये गये:—

कृषिः राजस्थान की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। रेगिस्तानी क्षेत्र में 80 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में बसे हुये हैं, जिनका मुख्य धन्धा कृषि व पशु पालन है। रेगिस्तान में वर्षा अनियमित व बहुत कम होती है। यहां एक ही फसल होती है, वह भी वर्षा पर पूर्ण रूप से निर्भर होती है।

अतः मरू विकास कार्यक्रम के अंतर्गत सराकर द्वारा उपलब्ध जल का अधिकतम उपयोग किये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं। इस हेतु भू-संरक्षण, भू-सर्वेक्षण, फव्वारे सैट वितरित करना, मिट्टी की जांच हेतु परीक्षण केन्द्र स्थापित करना, इत्यादि कार्य किये गये हैं। सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में मरूस्थली क्षेत्रों में कुल 42,637 हैक्टेयर क्षेत्र में भू-संरक्षण का कार्य किया गया।

सिंचाईः राजस्थान के मरू क्षेत्रों में वर्षा की कमी, अनिश्चितता एवम् अनियमितता के कारण कृषि "मानसून का जुआ" बन जाती है ऐसी दशा में सिंचाई की व्यवस्था होने से ही मानसून की अनिश्चितता से छुटकारा मिल सकता है।

इस हेतु योजनाबद्ध विकास के प्रारंभ से ही सरकार द्वारा सिंचाई के साधनों को प्राथमिकता दी गई है। मरूभूमि विकास के लिये वर्षा के पानी का पूरा-पूरा उपयोग करने हेतु सरकार द्वारा रेगिस्तानी क्षेत्रों में छोटे तालाब, बांध बनाये गये हैं। लघु एवं मध्यम श्रेणी की सिंचाई योजनाओं को पूरा कर लगभग 35,000 हैक्टेयर भूमि में सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई गई है।

भेड़ एवं चरागाह विकासः मरू क्षेत्र में भेड़ों की संख्या कुल पशु संख्या का लगभग 30 प्रतिशत है। अतः सरकार द्वारा मरू भूमि विकास कार्यक्रम के अंतर्गत मरूस्थली क्षेत्रों में भेड़ों की नस्ल सुधार,

रख-रखाव, चारे की व्यवस्था, भेड़ व चरागाह विकास खंड स्थापित करना, भेड़ पालकों को प्रशिक्षण देना, इत्यादि कार्य किया जा रहा है।

वृक्षारोपणः मरूस्थली क्षेत्रों में वन विभाग द्वारा वृक्षारोपण कार्य तीव्र गति से किया जा रहा है। वन पौधशालाओं की स्थापना, टीलों का स्थिरीकरण, सड़कों के किनारे पेड़ लगाना, किसानों को भूमि पर छायादार व फलदार पेड़ लगाने के लिये प्रोत्साहित करना, इत्यादि कार्य किये गये हैं। अब तक लगभग 75,000 हैक्टेयर भूमि में वृक्षारोपण किया गया है तथा लगभग 45,000 हैक्टेयर क्षेत्र में वन विकास कार्य प्रगति पर है।

जल संरक्षण एवम् विदोहनः मरूस्थली क्षेत्र के सभी 11 जिलों में कृषि एवम् पेयजल की समस्या विकराल रूप धारण किये हुये है। अतः सरकार द्वारा जमीन की सतह से नीचे छिपी जल सम्पदा का पता लगाने हेतु सर्वेक्षण कार्य प्रगति पर है। नलकूपों का निर्माण, कुओं की खुदाई इत्यादि कार्य किये गये हैं।

दुग्ध विकासः सरकार द्वारा सभी 11 जिलों में दुग्ध विकास को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस हेतु पशुपालकों को अच्छी नस्ल के पशु क्रय करने हेतु प्रेरित करना, संतुलित पशु आहार उपलब्ध करवाना, दुग्ध उत्पादन केन्द्रों की स्थापना, पशु चिकित्सकों की स्थापना, चारे की व्यवस्था इत्यादि कार्य किये गये हैं।

विद्युतीकरणः मरु क्षेत्र में कुएं 200 मीटर तक गहरे होते हैं। अतः कृषि एवं पेयजल इन गहरे कुओं से प्राप्त करने हेतु सरकार द्वारा विद्युतीकरण की योजना के अंतर्गत गांवों में बिजली पहुंचायी जा रही है।

मरूस्थलीय क्षेत्र के इन 11 जिलों में अधिकांश गांव पेयजल समस्या से ग्रसित हैं। कई गांव तो ऐसे हैं, जहां पेयजल पानी के टैंकरों से पहुंचाया जाता है। इस समस्या को दूर करने के लिये सरकार द्वारा 'ग्रामीण पेयजल योजना' शुरू की गई है।

प्राकृतिक वनस्पति एवम् जन्तुओं के संरक्षण हेतु बाड़मेर व जैसलमेर जिले के लगभग 3,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में राष्ट्रीय मरू उद्यान की स्थापना की गई है।

'मरूभूमि विकास न होने से राजस्थान की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव या हानियां'

मरूस्थल या रेगिस्तान से दुष्प्रभावों के कारण संपूर्ण राजस्थान की जलवायु अत्यधिक विषम हो गई है, वर्षा की मात्रा भी कम होती जा रही है, पेड़-पौधे एवम् हरियाली नष्ट होती जा रही है। अकाल एवम् सूखे की समस्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है।

मरूभूमि के विकास पर ध्यान न दिया गया तो राजस्थान की अर्थव्यवस्था पर व्यापक एवम् दीर्घकालीन प्रभाव पड़ेंगे। अर्थव्यवस्था का संपूर्ण ढाचा चरमरा जायेगा। अगर मरुस्थल विस्तार को न रोका गया तो राज्य की कृषि आधारित जनसंख्या का बड़ा भाग रोजगार एवम् आय से वंचित हो जायेगा। भुखमरी एवम् बेकारी से जनजीवन अस्त-व्यस्त हो जायेगा। इन सबसे आर्थिक दरिद्रता और असमानता को बढ़ावा मिलेगा। कुपोषण और भुखमरी से कार्यक्षमता घट जायेगी।

चारे की कमी से पशुओं की अकाल मृत्यु, पशुओं की नस्ल में गिरावट एवम् सदैव अकाल की छाया बनी रहती है। सरकार को अकाल से राहत कार्यों पर भारी धनराशि खर्च करनी पड़ती है। जिससे सरकार को भारी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है।

मरूस्थली जिलों में सूखे के कारण पेयजल की समस्या सबसे विकट हो गई है। उद्योगों के कच्चे माल का अभाव, उद्योग व व्यापार में गिरावट, बेरोजगारी, भुखमरी, ऋणग्रस्तता इत्यादि विषम स्थितियां उत्पन्न हो गई हैं।

अतः अगर सरकार द्वारा मरूभूमि विकास पर पर्याप्त ध्यान न दिया गया तो अकाल व सूखे के कारण संपूर्ण राजस्थान की अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी, सर्वत्र अभाव ही अभाव दृष्टिगोचर होगा। भुखमरी, कंगाली और बेकारी सरकार के लिये एक जटिल समस्या बन जायेगी। वस्तुओं का अभाव ऊंचे मूल्यों को जन्म देता है, गरीबों का जीना मुश्किल हो जायेगा।

मरूभूमि विकास हेतु सुझाव

सरकार द्वारा मरू विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाय, तो मरूस्थल के दुष्प्रभावों से काफी हद तक बचा जा सकता है। इस हेतु निम्नलिखित सुझाव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं:—

(1) राजस्थान के पश्चिमी मरूस्थली भाग का उपयोग वर्षा के अभाव एवम् सिंचाई साधनों की कमी के कारण, कृषि के लिये संभव नहीं हो पाया है। अतः राजस्थान नहर को शीघ्र पूरा कर इन क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिये तथा जनसंख्या को उस क्षेत्र में बसाने का प्रयास किया जाना चाहिये।

(2) पश्चिमी राजस्थान में तेज हवाओं से भूमि का कटाव और पूर्वी भाग में पानी के तेज बहाव से मरूस्थल का प्रसार होता है। अतः इस समस्या से मुक्ति पाने के लिये भू-संरक्षण, सिंचाई सुविधाओं

भारतीय कृषि: स्थिति और सम्भावनाएं

□ लवलीन □

कृषि-उत्पाद विश्व-बाजार की स्पर्धा में खड़े हो सकते हैं। उन्हें अच्छा मूल्य प्राप्त हो सकता है। हमारे कृषि-पदार्थों के निर्यात की व्यापक सम्भावनाएं हैं। इसके जरिये हम देश के लिए मूल्यवान विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकते हैं। वर्ष 1985-86 में समुद्री उत्पादों सहित हमारे प्रमुख कृषि जिन्सों का कुल निर्यात केवल 1908 करोड़ रुपये था, जो 1990-91 में बढ़कर 4684 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। यह वर्ष 1985-86 की तुलना में ढाई गुना अधिक है तथा देश के कुल निर्यात का करीब 14 प्रतिशत बैठता है। समुद्री-उत्पादों से सबसे अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्ति होती है। इसके बाद कच्ची कपास और अन्य पदार्थों का नम्बर आता है। सभी संबंधित हलकों के सम्मिलित प्रयास करने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, भारत के उत्तर-पूर्व और दक्षिण के विशाल भू-भाग की इस सन्दर्भ में पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। इस क्षेत्र का उपयोग करना होगा।

अपनी शानदार उपलब्धियों के बावजूद भारतीय कृषि के सामने गंभीर चुनौतियां खड़ी हुई हैं। इसका कारण यह है कि एक ओर आबादी तेजी से बढ़ रही है और दूसरी ओर जमीन की उपजाऊ शक्ति घट रही है।

अभी तक हमने जो उपलब्धियां हासिल की हैं, वे हरित क्रांति वाले इलाकों में ही मिली हैं और अब भी हमारे सामने बारानी इलाकों में उत्पादन और उत्पादकता में सुधार लाना, हरे लेकिन हरित क्रांति से महरूम इलाकों में, जल ठहरण वाले क्षेत्रों में, मरूस्थल सहित पर्वतीय क्षेत्रों और सुमद्र तटवर्ती क्षेत्रों की उपज बढ़ाना बहुत बड़ी समस्या है । इन उजाड़ इलाकों में हरियाली लानी होगी और इसके लिए अनुसंधान और विकास के कार्यक्रमों को कारगर बनाकर पर्यावरण में असंतुलन को सुधारना होगा। हमें पूर्वी क्षेत्रों पर भी विशेष ध्यान देना होगा, क्योंकि वहां कृषि विकास की बहुत संभावनाएं हैं। इस क्षेत्र में वर्षा खूब होती है और जमीन के नीचे से पानी निकालकर सिंचाई के काम में लाने की भी बहुत संभावना है।

पानी का इस्तेमाल करते समय हमें राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को देखते हुए इसके समुचित उपयोग और संरक्षण पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। इन इलाकों में पैदावार में सुधार लाने के लिए खेतों में जल और ऊर्जा का उपयोग बहुत महत्व रखता है। इसके लिए हमें समेकित रूप से मिट्टी और पानी के परस्पर संबंधों में अनुसंधान के द्वारा तालमेल बिठाकर उपज बढ़ानी होगी। उत्तरी बिहार और पूर्वी भारत के कई हिस्सों में खरीफ के मौसम में पानी भर जाने की समस्या सिंचित इलाकों का सिर-दर्द बनी हुई है। वहां पानी के निकास की अच्छी व्यवस्था करके और रबी में भू-जल की बेहतर तकनीक अपनाकर उपज बढ़ाई जा सकती है और मिट्टी की पानी सोख रखने की क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है।

खेती के लिए जमीन का विस्तार तो संभव नहीं है। इसके लिए जरूरी है कि जो जमीनें बंजर पड़ी हैं, जिनमें बार-बार बाढ़ आती है या फिर जहां पर पानी का स्तर ऊंचा उठने की वजह से रेत ऊपर आ गयी है, वहां पानी के निकास के लिए खासतौर पर से इंतजाम किया जाये। मिट्टी की पैमाइश और भूमि-उपयोग नियोजन के आधार पर मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी दूर करने के प्रयास किये जायेंगे। कुल मिलाकर हमारा लक्ष्य यह है कि हमारे बेश-कीमती भूमि-संसाधन पर उत्पादन की टिकाऊ प्रणाली अपनायी जाए।

इस समय हमारे सामने जो समस्यायें खड़ी हुई हैं और जो समस्याएं आगे उभर कर आ रही हैं, इनको हल करने का एक ही तरीका है कि हम बुनियादी अनुसंधान को बढ़ावा दें। कृषि की वैज्ञानिक बुनियाद को और भी मजबूत करना होगा। कृषि को समयानुकूल बनाकर उद्योगों से प्रतियोगी बनाने के लिए नवीनतम टैक्नोलोजी का उपयोग करना निहायत जरूरी हो गया है।

बारानी खेती में किये गये अनुसंधान से फसलों की उत्पादकता बढ़ाने व कम लागत वाली अनेक तकनीकें विकसित की गई हैं। लेकिन इनका फायदा अभी बारानी इलाकों के किसानों तक नहीं पहुंचा है। इसके लिये यह जरूरी होगा कि बारानी इलाकों में नयी तकनीकों के प्रसार का काम तेजी से किया जाए और आर्थिक-सामाजिक समस्याओं में अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाए।

वर्षा के पानी को इस्तेमाल में लाने, कीट-नियंत्रण, खाद्य उत्पादन और इसी तरह से दूसरे कामों में सामूहिक सहकारिता बढ़ाने के लिये जन नीतियों में क्या परिवर्तन लाने होंगे। सामूहिक बीमा, सामूहिक विस्तार और सामूहिक प्रोत्साहन के तरीके अपनाकर हम इस दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में अकूत प्राकृतिक सम्पदा है, लेकिन अब यहां भी शोषण बढ़ने लगा है और हमारी स्थायी सम्पदा नष्ट होने लगी है। इसे बचाने के लिये आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण और सुधार के काम को प्राथमिकता देनी होगी। पर्वतीय क्षेत्रों में फसलों और पशुओं की उत्पादकता अधिकतर मामलों में राष्ट्रीय औसत से कम है। इसका कारण यह है कि यहां पर एक ओर मिट्टी-पानी और जैविक विविधता के कुदरती संसाधन बिगड़ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर कीट-व्याधियों और रोगों की समस्या जटिल हो गयी है।

तटवर्ती क्षेत्रों में कृषि अनुसंधान के लिये समेकित दृष्टिकोण अपनाना होगा। यहां पर समुद्रों से मछली पकड़ने के साथ-साथ खारे पानी से खेती करने, वानिकी, बागानी फसलें, मसाले, धान और पशु उत्पादन को अपनाने की जरूरत है। पशु-पालन संबंधी अनुसंधान में अभी डेरी उत्पादन बढ़ाने पर विशेष बल दिया गया है।

मिट्टी में जैव पदार्थों को तैयार करने के लिए किसानों को आसानी से अच्छी किस्म के जीवाणु मुहैया कराये जाने चाहिए। लम्बे अरसे से मवेशी कुपोषण के शिकार रहे हैं। पशुओं और दूध तथा दूध से बनी चीजों जैसे पशु-उत्पादों और उनके आधुनिकीकरण पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्त: स्थलीय और समुद्री मछली पालन की भी व्यापक सम्भावनाएं हैं। देश की निर्यात-क्षमता के लिए यह जरूरी है कि हमारे उद्योग इस दिशा में सरकार की सहायता से आगे आयें।

ग्रामीण परिवारों की आमदनी बढ़ाने की आवश्यकता है। गैर खेती वाले इलाकों में रोजगार देने वाली योजनाएं तैयार की जानी चाहिए। अनुसंधान की सहायता से हमारे उद्योग, खाद्यान्नों और कपास, गन्ना और जूट जैसी व्यावसायिक फसलों तथा तिलहनों सम्बन्धी जिन्सों के निर्यात को पर्याप्त प्रोत्साहन दे सकते हैं।

ए-36 बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स
मुनीरका, नई दिल्ली-64

पृष्ठ 35 का शेष

उनके मध्यस्थ लोगों को भी जो इस प्रक्रिया में अपराधियों व ग्रामीणों का शोषण करते हैं। यद्यपि लेखक का ध्येय पुलिस की छवि धूमिल करने का नहीं है। वैसे तो अपवाद सभी जगह होते हैं।

श्री कालभोर का यह मानना है कि एक ऐसा चक्र चलता रहता है जिसमें न्यायालय भी असहाय हो जाता है। पुलिस यदि कुछ करना चाहे और कठोर अनुशासन, शक्ति और ईमानदारी का परिचय दे तो भी अनेक तरह से उन पर दबाव डलवाये जाते हैं, धमकियां दी जाती हैं, अत: अपनी नौकरी पर किसी प्रकार का कलंक आने से पहले ही पुलिस कर्मी अपने को अपराधियों के अभिकर्त्ता के साथ समन्वित कर काम करने लगते हैं। उक्त सारे प्रकरण में शोषण अपराध में फंसे लोगों का ही होता है।

लेखक का मानना है कि यदि अन्वेषण में वाकई कोइ काम बेहद रूचि का हो सकता है तो वह कार्य अंगुली छाप तथा अपराध शास्त्र के अध्ययन से बढ़कर इन अभिकर्ताओं (एजेंट) के चेहरों से नकाब उतारने का है जो असल में समाज के भेंड़ हैं और ग्राम के प्रतिष्ठा-पुरूष बने पुलिस अधिकारियों को भ्रष्ट व कलंकित करने बैठे हैं। उनका पर्दाफाश तभी हो सकता है जब ग्रामीण-अपराध एवं अपराधियों के लिए अलग से अपराध अनुसंधान ईकाई की शुरूआत हो। पुलिस प्रशासन को भी अपने ऊपर पड़ने वाले छींटों से बचना पड़ेगा।

प्रस्तुत पुस्तक समस्त पुलिस अधिकारियों, कानून एवं न्याय से संबंधित लोगों, पुलिस अनुसंधान के अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक की सज्जा उचित है पर मूल्य कुछ अधिक है।

समीक्षक: कैलाश नाथ गुप्त
डी-एक-ए/115 जनकपुरी,
नई दिल्ली-58

कृषि क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं की उपेक्षा क्यों ?

□ शुभकंर बनर्जी □

क्या भारतीय कृषि में महिलाओं की भूमिका कम महत्वपूर्ण है ? क्या कृषि जगत में महिला विशेषज्ञों की भूमिका कृषि विश्वविद्यालय तक ही समिति रह जायेगी ? क्यों आज तक कृषि के क्षेत्र में महिलाओं के योगदान का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो कृषि में महिलाओं के योगदान से सम्बन्धित हैं।

भारतीय समाज में कृषि को शुरू से ही शारीरिक श्रम से जोड़ा गया था जिस पर पुरूषों का वर्चस्व रहा। अतः महिलाओं का योगदान इस क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण होते हुए भी पुरूष प्रधान समाज ने उसकी उपेक्षा की। फलस्वरूप कृषि उपकरणों में भी महिलाओं की शारीरिक बनावट के अनुरूप कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया जाता है। साथ ही कृषि क्षेत्र में हो रही उन्नतियों एवं तकनीकी खोजों का लाभ भी केवल पुरूष कृषकों तक ही पहुंचता है। महिलाओं के प्रयोग योग्य आधुनिक कृषि उपकरणों की खोज नहीं हुई या इस दृष्टिकोण से कोई काम नहीं किया गया।

कृषि क्षेत्र में नारी की भूमिका को संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन ने बड़ी अच्छी तरह रेखांकित किया है। इस संगठन के एक प्रकाशन में कहा गया है कि समस्त विश्व में कुल मिलाकर जितने घंटे काम होता है उनमें से दो तिहाई घंटे (अर्थात लगभग 66 प्रतिशत) काम केवल महिलाओं द्वारा किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में नारियां पूरी दुनिया के कुल खाद्य का 50 प्रतिशत उत्पादन करती हैं। चाहे कोई भी कृषि सम्बन्धित काम हो (उदाहरण के लिए रोपाई, बुवाई, सिंचाई, खाद की छिड़काई, फसल की कटाई आदि) महिलाओं की भूमिका इन सभी कार्यकलापों में महत्वपूर्ण होती है। वे न केवल पुरूषों के मुकाबले समान रूप से मेहनत करती हैं बल्कि पुरूषों से कहीं अधिक ज्यादा तकलीफ उठाती हैं। वे ज्यादा मेहनत करती हैं फिर भी पुरूष प्रधान समाज उसकी उपेक्षा करता है तथा कृषि का सारा श्रेय अपने जिम्मे कर लेता है।

विकासशील देशों में ज्यादातर ग्रामीण महिलायें कृषि पर निर्भर करती हैं। उदाहरण के रूप में भारत की 81 प्रतिशत ग्रामीण महिलायें (चाहें खेतिहर हों या मजदूर) कृषि क्षेत्र से ही अपनी रोजी रोटी चलाती हैं। इस क्षेत्र के विभिन्न कार्यों में (बीज रोपण से फसलों के भण्डारण तक) महिलाओं का सीधा योगदान होता है। इसके अलावा पशुओं की देखभाल, बागवानी तथा घर की जिम्मेदारी आदि सभी गतिविधियों में उनकी महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य भूमिका होती है। कृषि जगत का ज्यादातर या यूं कहिए सारी जिम्मेदारी महिलाओं के कंधों पर होती है। जिन्हें पुरूष वर्ग अबला की संज्ञा देता है उन्हीं के कंधों पर ज्यादातर श्रमसाधन कार्य सौंप देते हैं। अकेले हिमाचल प्रदेश की 80 प्रतिशत महिलायें खेतों में काम में लगी रहती हैं।

कृषि जगत की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि सबसे ज्यादा मेहनत करने वाली महिलाओं में से मुश्किल से एक आध ही अपनी खेत की मालिक हैं। हालांकि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकारा गया है फिर भी महिलाओं का जमीन तथा दूसरे पारिवारिक उत्पादक स्रोतों (जैसे पशुधन) पर उनका अधिकार स्थापित करने की दिशा में कोई सफल चेष्टा नहीं हुई। इसके अलावा महिलाओं को यह आजादी नहीं है कि वे फसलों की बिक्री या दूसरे उत्पादनों से होने वाली आय पर उनका कोई अधिकार जतायें या कोई आर्थिक हिस्सा की मांग करें। जबकि यह स्वीकृत तथ्य है कि कृषि के हर क्रियाकलाप में महिलाओं की अति महत्वपूर्ण भूमिका है।

महिलाओं को कृषि क्षेत्र में विशेष स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। गत कई दशकों से महिला कृषकों की संख्या घट रही है तथा महिला कृषि मजदूरों की संख्या बढ़ रही है। स्पष्ट है कि उनका कृषि क्षेत्र में स्थान किसानों से बदल कर मजदूरों का हो रहा है। इस के पीछे कई सामाजिक कारणों की भूमिका है। मसलन जुताई क्षेत्रों का छोटे-छोटे टुकडों में बंटवारा, पारिवारिक ऋण से ग्रस्त होने की वजह से उन्हें भूमि से वंचित करने का षड़यंत्र, बड़े भूपतियों तथा सम्पन्न किसानों एवं जमींदारों द्वारा काश्तकारों एवं पट्टेधारकों की बेदखली की क्रूर नीति आदि जैसे अनेक कारणों से उनकी समस्यायें जटिल होती जाती हैं।

वैसे भारत, अमेरिका एवं रूस के बाद तीसरा ऐसा देश है जहां कृषि के क्षेत्र में तकनीकी तथा वैज्ञानिक प्रतिभा युक्त जनशक्ति का संबंधित विकास हुआ है। परन्तु हमारी इस उपलब्धि का कोई लाभ महिला कृषकों या इसी से सम्बन्धित मजदूरों को नहीं मिला। कृषि के लिए वे जो मेहनत करती हैं उसे कम करने या उन्हें आराम

देने के उद्देश्य से कितनी खोजें हुई हैं ? ज्यादातर कृषिगत वैज्ञानिक अन्वेषणों का उपयोग पुरूष की मेहनत को कम करने के लिए किया गया है।

पुरूष प्रधान देश भारतीय कृषि जगत ने महिला कृषकों या खेत मजदूरनियों के लिए पुराने एवं स्थानीय तरीकों तथा पारंपरिक उपकरणों पर ही निर्भरशील रख छोड़ा है। इससे महिला कृषि कार्यकत्ताओं की कार्यकुशलता पर भी प्रभाव पड़ता है। एक बात और न समझ में आने वाली है कि उच्च तकनीक युक्त कृषि उपकरणों का विकास करने वाले कृषि विशेषज्ञों या कृषि वैज्ञानिकों द्वारा महिला कृषि कार्यकत्ताओं की आवश्यकताओं का ध्यान क्यों नहीं दिया जाता है। इसके पीछे सबसे बड़ी बात यह है कि कृषि उपकरणों तथा कृषि प्रौद्योगिकी में अनुसंधान करने वाले ज्यादातर वैज्ञानिक ऐसे हैं जो उपकरणों का डिजाइन तथा उसका प्रयोग करते समय महिलाओं की शारीरिक बनावट तथा इससे सम्बन्धित अपेक्षाओं पर ध्यान नहीं देते हैं। यह तो सभी जानते हैं कि शारीरिक दृष्टि से महिलाओं को उपकरणों का प्रयोग अक्सर छोटे बच्चों तथा परिवार के कनिष्ठ सदस्यों की उपस्थिति में करना पड़ता है। अतः कृषि कार्य के समय महिला कृषि कामगारों को उन बच्चों तथा कम उम्र के सदस्यों की सुरक्षा का ध्यान रखना पड़ता है। अतः महिलाओं के लिए बनाये जाने वाले कृषि उपकरणों का डिजाइन वैसा होना चाहिए कि उनकी अपेक्षाओं, जरूरतों तथा शारीरिक बनावट पर पूरा-पूरा विचार करना होगा।

उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करते समय खाद्य तथा कृषि संगठन से सम्बन्धित वेलेक्सेंडर स्टीफस की राय पर भी ध्यान देना चाहिए। उनके मतानुसार कृषि डिजाइनरों को चाहिए कि वे कृषि उपकरणों के डिजाइन को अंतिम रूप देने से पहले तथा उसकी आरंभिक सैत्र परीक्षण (फील्ड टेस्टिंग) करते समय महिला कृषि कार्यकर्त्ताओं से मिलें तथा उसे ग्रामीण परिस्थिति में इन भावी उपकरणों के बारे में उनकी राय ले लें। इससे महिला कृषि कामगारों की बुनियादी जरूरतों तथा समस्याओं को सुलझाने में अत्यंत सहायता मिलेगी।

भारत के किसानों की वर्तमान परिस्थिति के विषय में एक नई जानकारी मिली है। 'भारत का पर्यावरण' नामक पुस्तक से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार हरित क्रांति के तकनीकों के आगमन के बाद देश के अनेक जमींदारों ने अपने काश्तकारों को जमीन से हटा लिया तथा उस पर स्वयं खेती करना आरम्भ कर दिया। इससे छोटे तथा सीमांत किसानों की सामाजिक स्थिति कम हो गयी तथा वे खेतीहर मजदूरों में बदल गये। साथ ही ऐसी महिलायें जो अपने ही खेतों पर कृषि सम्बन्धी क्रियाकलाप करती थीं अब दूसरों के खेतों में काम करने लगी हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार ऐसे परिवारों की महिलायें जो पहले कटाई और थ्रेशिंग आदि कार्यों में लगी थीं, उनके रोजगार पर भी प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि इन कामों का मशीनीकरण हो गया है। जबकि ये काम पहले मुख्यतया महिलायें ही करती थीं। मशीनीकरण के कारण उनके संचालन करने वाली महिलाओं की भी कम से कम जरूरत पड़ेगी।

महिला विकास अध्यन केन्द्र द्वारा भी इस सम्बन्ध में काफी चिन्ता व्यक्त की गई है। कृषि के विकास और आधुनिकीकरण से महिलायें रोजगार से विस्थापित हुई हैं। दूसरी बात यह भी है कि महिलाओं के लिए हरित क्रांति तकनीक के अर्थ कई मामलों में जटिल हैं। यह कदापि आवश्यक नहीं है कि महिलाओं के लिए यह तकनीकी क्रांति सर्वथा सकारात्मक ही हो।

इसके अलावा अब बात यह भी है कि कृषि क्षेत्र में महिलायें यदि अपने आपको स्वनिर्भर बनाना भी चाहें तो भी उनकी आर्थिक समस्यायें उनके आड़े आ जाती हैं। स्वनिर्भरता के लिए बैंकों, सहकारी समितियों तथा ऐसी दूसरी संस्थाओं से ऋण केवल भूमि के पट्टे पर ही प्राप्त होता है। साधारणतया भूमि का मालिक पुरूष कृषक ही होता है तथा महिलायें अपने आप ही इस सुविधा से वंचित हो जाती हैं।

समय की सबसे बड़ी मांग यही है कि कृषि में महिलाओं के योगदान को पर्याप्त मान्यता दी जाय तथा उनकी शारीरिक अपेक्षाओं के अनुरूप आधुनिक कृषि उपकरणों तथा कृषि प्रौद्योगिकियों को ढाला जाये। इन अनुसंधानों का लाभ भी आसानी से महिला कृषि कामगारों तथा महिला कृषकों तक पहुंचना चाहिए। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि उनकी समस्याओं को सुलझाने के विषय को आर्थिक विकास का एक अंग मान लिया जाय। देश के कृषि वैज्ञानिकों की रूचि इस समस्या के निदान के प्रति बढ़ाई जाय तथा इसकी सामायिकता पर यथेष्ट ढंग से विचार किया जाय। यह केवल उनकी व्यक्तिगत समस्या नहीं है वरन् देश के समग्र विकास का एक अति महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग है।

बी-74, सादतपुर एक्सटेंशन,
करावल नगर रोड
दिल्ली -110094

जायद मौसम में अधिक उत्पादन कैसे लें?

□ डा० एस.के. उत्तम □

□ डा० यू.डी.अवस्थी □

उत्तर प्रदेश में कृषकों को कृषि साधनों के अभाव में अधिकांश क्षेत्रों में वर्ष में एक ही या अधिक से अधिक दो फसलें उगाकर सन्तुष्ट होना पड़ता है जिससे कृषकों को वर्ष के अधिकांश महीनों में काम नहीं मिल पाता है तथा भूमि का पर्याप्त दोहन भी नहीं हो पाता है जबकि जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते हुये बोझ से प्रभावी ढंग से निपट पाना तभी सम्भव हो सकेगा जब उसी अनुपात में खाद्यान्न का उत्पादन भी बढ़ाया जाय और इसके लिये आवश्यक है कि किसान अपनी भूमि में वर्ष में एक से अधिक फसल उगाये और किसी स्तर पर खेत खाली न छोड़े। सामान्य प्रचलित फसल चक्रों के अनुसार अधिकांश खेत रबी की फसल कटने के बाद लगभग तीन महीने के लिये खाली हो जाते हैं तथा खरीफ की बुवाई तक खाली पड़े रहते हैं। इस अवधि में यदि हमारे किसान भाई अपने खेतों पर मूंग, उर्द, लोबिया, कपास, सूरजमुखी, मूंगफली, सोयाबीन की फसल उगाएं तो उसे एक अच्छी अतिरिक्त आय प्राप्त होगी। मूंग, उर्द की पैदावार खरीफ की अपेक्षा अधिक तथा साफ दाने वाली प्राप्त होती है।

भूमि का चुनाव व तैयारी

आलू, मटर, राई-सरसों व गन्ने के कटने के बाद जो भी खेत बुवाई हेतु मार्च के प्रथम पखवारे में उपलब्ध हों तथा जिन खेतों में सिंचाई की सुनिश्चित व्यवस्था हो, इन्हें ही जायद मौसम में फसलों की खेती के लिए चुनना चाहिये। पलेवा करके एक या दो जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करके खेत को तैयार कर लेना चाहिये, नमी कायम रखने के लिए हर जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें।

बीज की मात्रा

जायद मौसम में पौधा अपेक्षाकृत कम बढ़ता है और कैनोपी भी कम रहती है। अतः बीज की मात्रा जायद मौसम में बढ़ा देना चाहिए। यह मात्रा उर्द के लिये 25-30 कि./हे., मूंग के लिये 20-25 कि./हे., लोबिया के लिये 15-20 कि./हे., सूरजमुखी के लिये 10-12 कि./हे., मूंगफली के लिये 100-125 कि./हे., कपास के लिये 20-25 कि./हे., तथा सोयाबीन के लिये 40-50 कि./हे., बीज का प्रयोग करना चाहिये।

बीजोपचारः

आजकल सरकारी या सरकार से स्वीकृत संस्थानों में प्रमाणित बीज प्रायः उपचारित रूप में उपलब्ध होते हैं परन्तु यदि किसान भाई अपने घर बीज प्रयोग करना चाहते हैं तो उपलब्ध बीज को छानकर अच्छा स्वस्थ बीज अलग कर लें और निम्न तरीके से बीजोपचार कर सकते हैं। बीजोपचार का आर्थिक महत्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि बीज के उपचार के लिये रसायन की थोड़ी मात्रा की आवश्यकता होती है जबकि खड़ी फसल में रोग उपचार के लिये रसायन की काफी मात्रा व्यय करनी पड़ती है।

2 ग्राम थीरम या कैप्टान को प्रति कि.ग्रा. दलहनी बीज में मिलाकर बीज शोधन करना चाहिए। बीज शोधन के बाद बीजों को एक बोरे पर फैलाकर उससे संबंधित विशिष्ट राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिये। एक पैकेट कल्चर 10 कि.ग्रा.बीज के लिये पर्याप्त होता है। सूरजमुखी तथा कपास के बीजों को 2.5 ग्राम कैप्टान प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से डालकर बीजोपचार करना चाहिये। मूंगफली को 0.5 प्रतिशत कापर सल्फेट के घोल में 30 मिनट तक डुबोना चाहिये।

बुवाई का समय

जायद फसलों को मार्च के प्रथम पखवारे से द्वितीय पखवारे तक अवश्य बो देना चाहिये, बुवाई में देर करने से दलहनी फसलों में पीला चित्रवर्ण रोग लगने का भय रहता है तथा गर्म तेज हवा के कारण फूल कम आते हैं।

बुवाई की विधि

जायद मौसम में सभी फसलों की बुवाई देशी हल के पीछे कूंड़ों में करना चाहिये ताकि खरपतवार आसानी से निकाली जा सके और उर्वरकों को कूंड़ो में डाला जा सके। बुवाई के तुरन्त बाद पाटा लगाना आवश्यक है अन्यथा संरक्षित नमी का ह्रास तेज धूप व पछुआ हवा के कारण अधिक होता है।

बीजों में उचित फासला

चूंकि जायद मौसम में तेज धूप व सीमित सिंचाई के साधन होने के कारण फसलों की बढ़ोत्तरी खरीफ मौसम की अपेक्षा काफी कम होती है। इसलिये यह बहुत जरूरी है कि प्रति इकाई क्षेत्र

पर अधिक पौधे रखे जायें अर्थात कतार से कतार की दूरी व पौधों से पौधों की दूरी कम कर देना चाहिये। कतार से कतार व पौधों से पौधों की दूरी 20 x 5 सेमी. उर्द के लिये, 30 x 10 सेमी. मूंग के लिये, तथा कपास के लिये 60x20 सेमी. उचित मानी जाती है।

उर्वरक

वर्तमान तकनीकी वैज्ञानिक युग में कम व्यय करके अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति के लक्ष्य के लिये रोज नये-नये अनुसंधान किये जा रहे हैं। अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति हेतु भूमि की उर्वरता एवं उत्पादकता की सही स्थिति एवं भूमि के अन्य भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। भूमि के गुणों के आधार पर ही सही मात्रा में तथा सही किस्म के उर्वरक का प्रयोग सम्भव है तथा अधिकतम उपज की प्राप्ति न होने की दशा में 15 कि. नाईट्रोजन + 40 कि. फॉस्फोरस/हे. मूंग, उर्द, लोबिया, सोयाबीन के लिये 80 कि. नाईट्रोजन 60 कि. फॉस्फोरस + 40 कि. पोटास/हे. सूरजमुखी के लिये 20 कि. नाईट्रोजन + 35 कि.फॉस्फोरस/हे. प्रयोग करना चाहिये। दलहनी फसलों में उर्वरकों की सम्पूर्ण मात्रा तथा मूंगफली सूरजमुखी व कपास में नाईट्रोजन की आधी मात्रा व फॉस्फोरस तथा पोटाम की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय कूँड़ों मे बीज से 2-3 सेमी नीचे डालना चाहिये, शेष नाईट्रोजन की आधी मात्रा प्रथम सिंचाई के बाद टाप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करनी चाहिये। दलहनी फसलों में मेथि आनिन, सिस्टीन तथा सिस्टाइन नामक ऐसें अमीनों एसिड पाये जाते हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनकी रचना में गन्धक का महत्वपूर्ण योगदान रहता है इसके अतिरिक्त परिपक्वता एवं सामान्य वृद्धि पर गंधक का अनुकूल एवं महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः दलहन की सामान्य उपज एवं इसमें बढ़ोत्तरी करने हेतु गंधक की पूर्ति आवश्यक है। गंधक का 20-25 कि./हे. मात्रा प्रयोग करने से 25-50 प्रतिशत तक उपज बढ़ाई जा सकती है।

नमी संरक्षण उपाय

जायद मौसम में बुवाई के बाद भूमि तेज धूप के कारण तेजी से सूखने लगती है, सख्त हो जाती है और मिट्टी का ताप भी बढ़ जाता है। फलतः भूमि से भण्डारित जल का वाष्पन द्वारा अधिक नुकसान होने लगता है। बुवाई के 15 दिन बाद फसलों की पँक्तियों के बीच 4 टन/हे. की दर से सूखी पत्ती, घास, भूसा, कड़वी, धान की पलवार, गन्ने की पताई, भूमि की सतह पर बिछाने से वाष्पीकरण की दर जो अत्यधिक है, बहुत कम हो जाती है। धरती को तेज धूप के सीधे प्रभाव से बचाती है, इससे जड़ों वाले क्षेत्र का तापमान कम रहता है, कम तापमान व नम मिट्टी के फलस्वरूप तत्व अधिक मात्रा में फसल को प्राप्त होते हैं। पतवार बिछाने से खरपतवारों के उगने की क्षमता बहुत कम हो जाती है। इन सब कारणों से पौधों की जड़ें अच्छी प्रकार से फैलती हैं फसल को ज्यादा से ज्यादा भोजन व पानी मिलता है साथ ही निराई गुड़ाई की आवश्यकता न पड़ने के कारण निराई - गुड़ाई में व्यय होने वाला धन की बचत होती है। पतवार बिछाते समय बी.एच.सी. धूल का बुरकाव /हे.) आवश्यक है। उक्त धूल का बुरकाव करने से दीमक का प्रकोप कम हो जाता है। अभी हाल ही में वैज्ञानिकों ने जलशक्ति रसायन का विकास किया है जो अपने भार से 100 गुना पानी सोखकर लम्बी अवधि तक रोके रखने की क्षमता रखता है। यही नहीं, उक्त रसायन पानी को इस प्रकार बांध कर रखता है कि पौधों को पानी मिलता रहे, पर पानी का ह्रास वाष्पीकरण व रिसाव क्रिया द्वारा नगण्य हो। रसायन जायद मौसम में थोड़ी मात्रा में डालने से पानी के उड़ने की क्रिया से बचाकर पौधों को उपलब्ध कराने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कानपुर में किये गये परीक्षणों से यह मालूम हुआ है कि कपास में जलशक्ति 5 कि.ग्रा/हे. की दर से बुवाई के समय कूँड़ डालने से वाष्पीकरण की क्रिया में कमी, जड़ों के क्षेत्र में जल संरक्षण व रिसाव में कमी तथा उपज में 15 से 20 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गयी है।

सिंचाई :

जायद मौसम में फसलों की सिंचाई भूमि की किस्म, तापमान व हवाओं की तीव्रता पर निर्भर करती है। आमतौर पर पहली सिंचाई बहुत शीघ्र नहीं करनी चाहिये अन्यथा जड़ों का विकास ठीक प्रकार नहीं हो पाता है। सिंचाई क्यारी बनाकर करना चाहिये। पहली सिंचाई बुवाई के 20-25 दिन के अन्तर पर करनी चाहिये। प्रायः यह देखा गया है कि हमारे किसान भाई सिंचाई में पानी आवश्यकता से अधिक या आवश्यकता से कम प्रयोग करते हैं। सिंचाई में पानी इतना दिया जाये कि वह जड़ो के प्रभावी क्षेत्र तक रिस जाय। फसलों में आवश्यकता से अधिक जल देना केवल फिजूल खर्ची ही नहीं होती है बल्कि इसके अप्रत्यक्ष एवं दूरगामी कुप्रभाव भी हो सकते हैं। कम पानी देने पर सिंचाई की कुशलता घट जाती है।

शेष पृष्ठ 43 पर

राजस्थान में पीने के पानी की व्यवस्था

□ कृष्ण कुमार रत्तू □

राजस्थान भारत की पश्चिमी सीमा पर बसा सीमावर्ती राज्य है, जिसमें रेतीले मरू प्रदेश, मैदान, पहाड़ सब कुछ प्रकृति ने दिये है, पर इस प्रदेश में पीने वाले व दूसरे पानी की बड़ी किल्लत है। सरकारी प्रयासों के बावजूद अभी तक इंदिरा गांधी नहर का निर्माण कार्य पूरा नहीं हो सका है जिससे इस राज्य के पश्चिमी भूभाग को पानी के अकाल से कुछ राहत मिल जाती। इस दिशा में प्रयास जारी हैं।

ग्रामीण पेयजल के समुचित प्रबन्ध के लिए राज्य सरकार ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न प्रकार के कार्य हाथ में लिए। सर्वप्रथम पंचायत विभाग द्वारा कुछ पेयजल योजनायें बनाई गई। उसके पश्चात् राजस्थान जल बोर्ड द्वारा नए कुओं के निर्माण, पुराने टैंकों व कुओं की मरम्मत, नये टैंकों के निर्माण आदि कार्य करवाये गये। प्रारम्भ में जन स्वास्थ्य विभाग सार्वजनिक निर्माण विभाग का ही अंग था। जन स्वास्थ्य विभाग ही राज्य में पेयजल सम्बन्धी कार्यों को देखता था। अगस्त 1965 में इस विभाग का पृथक से गठन हुआ पेयजल सम्बन्धी कार्यों को गति देने हेतु मई 1980 में राजस्थान जल प्रदाय एवं सीवरेज प्रबन्ध बोर्ड का गठन किया गया।

राजस्थान क्षेत्रफल के आधार पर भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल 3.42 लाख वर्ग किलोमीटर है जो कि देश के कुल क्षेत्रफल का 10 प्रतिशत है।

उत्तर से दक्षिण तक फैली अरावली श्रृंखला इस राज्य को दो बराबर भागों में बांटती है। राज्य के उत्तर पश्चिमी भू-भाग में मूलतः थार रेगिस्तान फैला हुआ है और दक्षिण-पूर्वी भाग अर्द्ध मरूस्थली एवं पर्वतीय है। रेगिस्तानी क्षेत्र में वर्षा का औसत 5 से 12.5 से.मी. ही रहता है। पानी की एक-एक बूंद यहां अमृततुल्य है। प्रदेश के जल स्रोत देश के कुल जल स्रोतों के एक प्रतिशत से भी कम है।

राज्य में जल स्रोतों का नितान्त अभाव है एवं अधोभूमि जल स्रोत भी अत्र-तत्र ही प्राप्त है और वह भी अत्यधिक गहराई पर उपलब्ध हैं। कई स्थानों पर अधोभूमि जल अधिक घुलनशील लवणों तथा क्लोराइड, फ्लोराइड आदि से युक्त होने के कारण पेय योग्य नहीं है। इन सभी विसंगतियों एवं कठिन परिस्थितियों के कारण यहां पेयजल उपलब्ध करवाना एक अत्यन्त जटिल व चुनौती पूर्ण उत्तरदायित्व है।

आजादी से पूर्व यह राज्य कई रियासतों में बंटा हुआ था। जनता को पेयजल सुलभ कराने के लिए कोई ठोस प्रयास नहीं किये गये थे, कुछ रियासतों में प्रयास किये भी गये, किन्तु समस्या विराट, व्यापक और गम्भीर होने के कारण ये सीमित ही रहे और उसका लाभ भी कुछ लोग ही उठा सके या प्रशासकों तक ही सीमित रहा। सुरक्षित जल प्रदाय की यह सुविधा केवल जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अजमेर तथा डूंगरपुर नगरों में ही थी।

राज्य के दूरदराज के ग्रामों में पेयजल उपलब्ध कराने के लिए पिछले वर्षों में सरकार ने राज्य के सभी 201 नगरों को पेयजल से लाभान्वित कर दिया गया था किन्तु निरन्तर वर्षा की कमी भू-जल की मात्रा में गिरावट एवं शहरी क्षेत्र में पेयजल की बढ़ती हुई मांग को मद्देनजर रखते हुए समय समय पर दीर्घकालीन व अल्पकालीन पुर्नगठित योजनाओं का कार्य करवाया गया। वर्तमान में अजमेर, ब्यावर, किशनगढ़, नसीराबाद नगरों के लिए बीसलपुर योजना, जोधपुर के लिए आई.जी.एन.पी.पेयजल योजना, उदयपुर शहर के लिए जयसमन्द व मांसीवाकल एवं डीग कुमेर के लिए पुनर्गठित योजनाओं का कार्य करवाया जा रहा है। इसके अलावा अन्य नगरों में भी आवश्यकता अनुसार संवर्धन का कार्य किया जा रहा है।

सरकार द्वारा इस दिशा में किये कार्यों के आंकड़े इस प्रकार हैं। ग्रामीण पेयजल योजनाओं के लिए विभाग ने उल्लेखनीय कार्य किया है। अक्टूबर 89 तक राज्य के कुल 31830 ग्रामों को विभिन्न पेयजल योजनाओं द्वारा पेयजल उपलब्ध करवाया गया था। मार्च 1990 तक राज्य के सभी समस्याग्रस्त ग्रामों को पेयजल से लाभान्वित किये जाने हेतु विभाग ने प्रयत्न किए।

विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय विकास अधिकरण ने मई 1980 में विभाग की 138 करोड़ रुपयों की पेयजल योजनाएं स्वीकृत की थीं। इस कार्यक्रम के तहत मुख्य रूप से जयपुर, जोधपुर, बीकानेर एवं कोटा शहरों की जल प्रदाय योजनायें तथा जयपुर, जोधपुर, बीकानेर की सीवरेज योजनाओं का कार्य करवाया गया। ग्रामीण

क्षेत्र में भी करीब 5 हजार ग्रामों को पेयजल से लाभान्वित किया गया।

ग्रामीण पेयजल कार्यक्रमों को गतिशील तथा कम खर्चीला व समस्त समस्याग्रस्त ग्रामों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने हेतु भारत सरकार ने ग्रामीण पेयजल व पानी व्यवस्था तकनीकी मिशन की स्थापना की है। तकनीकी मिशन के मिनिमिशन के अन्तर्गत राजस्थान के बाड़मेर, चुरू व नागौर जिलों को शामिल किया गया है साथ ही अन्य जिलों में से सब मिशन के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में पेयजल उपलब्ध कराने हेतु कार्यवाही जारी है। खारे मीठे पानी में बदलने के लिए 75 ''डी सेलीनेशन'' प्लान्ट एवं अत्यधिक फ्लोराइड की मात्रा को दूर करने के लिए ''डीफ्लोरेडेशन'' संयंत्र लगाये जाएंगे। इसी प्रकार दूरदराज के इलाकों में जहां बिजली की उपलब्धता नहीं है, पेयजल योजनाओं के लिए 40 सौर ऊर्जा चलित पम्प लगाने का लक्ष्य है। अब तक प्रदेश में 12 डी सेलीनेशन प्लान्ट लगाये जा चुके हैं।

बाड़मेर, चूरू एवं नागौर जिलों के लिए तकनीकी मिशन कार्यक्रम के तहत करीब 876 लाख रुपये की राशि भारत सरकार ने उपलब्ध करायी है।

नारू रोग उन्मूलन हेतु राज्य सरकार पूर्ण रूप से सजग है। अभी भी ग्रामवासी पेयजल सुविधा उपलब्ध होते हुए भी परम्परागत जल स्रोतों से भी पानी लेने के आदी है, जिससे नारू रोग होने की सम्भावना रहती है, अतः ग्रामवासियों को शुद्ध पेयजल ही काम में लेना चाहिए। भारत सरकार ने 4.92 करोड़ रुपये की एक योजना नारू उन्मूलन हेतु स्वीकृत की है जिसके अन्तर्गत 154 ग्रामों मे हैण्डपम्प लगाना एवं 633 बावड़ियों को सेनेटरी कुओं में परिवर्तित करने का कार्य सम्मिलित है।

'स्वच्छ' कार्यक्रम के अन्तर्गत डूंगरपुर, बांसवाड़ा एवं उदयपुर जिलों में हैण्डपम्प लगाने एवं सीढ़ीदार बावड़ियों को सेनेटरी कुओं में परिवर्तित करने का कार्य किया जा रहा है। इस कार्यक्रम की विशेषता यह है कि हैण्डपम्प स्थल के चयन में ग्रामों के पुरूष एवं स्त्रियों का योगदान प्रमुख रहता है।

कम वर्षा व सूखे के कारण पेयजल योजनाएं अत्यधिक प्रभावित होती हैं। गत 4-5 वर्षों के निरन्तर अकाल के समय विभाग ने करीब 10,000 हैण्डपम्प एवं 900 नलकूप या कुएं बनाये। इस कार्य की क्रियान्विति हेतु समय समय पर विभाग व राज्य सरकार द्वारा भारत सरकार को ज्ञापन पेश किये गये थे। पेयजल की कठिन समस्या को मद्देनजर रखते हुए भारत सरकार ने समय समय पर आवश्यक धनराशि उपलब्ध करायी जिससे गत वर्षों की गर्मियों में आम जनता को पेयजल उपलब्ध हो सका हो सका।

राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में एक लाख से भी ज्यादा हैण्डपम्प लगाए गये हैं। इन हैण्डपम्पों का रख-रखाव पंचायत समिति के पास होता है ताकि आम जनता को सुचारू रूप से पेयजल उपलब्ध हो सके।

10/889, मालवीय नगर,
जयपुर -17,
(राज०)

पृष्ठ 41 का शेष

फलियों की तुड़ाई/कटाई

फसल जैसे ही पककर तैयार हो तुरन्त पकी फलियों को तोड़ लें या कटाई कर लेना चाहिये। फलियों की तुड़ाई या कटाई का कार्य सुबह या सांयकाल करना चाहिये अन्यथा दिन में तेज धूप के कारण कटाई के समय दाने झड़ने लगते हैं जिसका उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

जायद मौसम में अधिकांश किसान भाइयों के पास कार्य का अभाव रहता है जिससे उनके श्रम का सदुपयोग नहीं हो पाता है। यदि उपरोक्त विधियों को अपनाकर जायद मौसम में किसान फसलोत्पादन करता है तो श्रम के सदुपयोग के साथ-साथ उसे अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो जाती है।

भूमि संरक्षण एवं जल प्रबंध विभाग
चन्द्रशेखर आजाद कृषि
एवं प्रा.वि.वि.
कानपुर–2

सहकारी आन्दोलन : समग्र विकास की ओर

□ विपिन कुमार □

विश्व में लोकतांत्रिक देशों के सहकारी आन्दोलनों की दृष्टि से भारत पहले स्थान पर है तथा सदस्यता एवं आकार की दृष्टि से भारतीय सहकारी आन्दोलन चीन के बाद अर्थात दूसरे स्थान पर है। देश में 3 लाख से ऊपर सहकारी समितियां कार्यरत हैं, जिनकी कुल सदस्य संख्या लगभग 15 करोड़ है। इन सरकारी संस्थाओं को चलाने में जहां सदस्यों और सहकारी नेताओं का मूर्धन्य योगदान रहा है वहीं इनमें कार्यरत लाखों कर्मचारियों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। देश की अर्थव्यवस्था को मुख्यतया तीन क्षेत्रों में बांटा जा सकता है :

(क) सार्वजनिक क्षेत्र

(ख) सहकारी क्षेत्र और

(ग) निजी क्षेत्र

व्यापार उद्योग और साख वितरण की दृष्टि से सहकारी क्षेत्र अपने आप में व्यापक और सार्वभौमिक है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था का कायाकल्प करने में इस क्षेत्र की भूमिका अत्यंत ही सराहनीय व प्रशंसनीय रही है। यदि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की उपलब्धियों को देखा जाये तो ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों से निर्धनता और पिछड़ेपन का अन्धकार दूर करके आर्थिक उन्नत एवं जागरूकता का नवप्रकाश भरने में सहकारी समितियों ने सराहनीय योगदान दिया है। ऋणग्रस्तता से मुक्ति दिलाने में भी सहकारी क्षेत्र का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इन समितियों ने समानता के आधार पर ग्रामीणों को अपना उत्थान करने के लिए खुद आगे आने के लिए प्रेरित किया है। साथ ही, छोटे-से-छोटे आदमी को भी सुअवसर प्रदान कर प्रोत्साहित किया है। सहकारिता एक ऐसा माध्यम है, जिसके तहत कुछ व्यक्ति मिलकर अपने सामाजिक और आर्थिक हितों की अभिवृद्धि के लिए स्वेच्छापूर्वक कार्य करते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि जो कार्य आर्थिक दुर्बलता के कारण व्यक्तिगत रूप से क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, उसे सहकारिता रूपी संगठन के माध्यम से सरलतापूर्वक करने का प्रयास किया जाता है। किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि :–

> ''जल की बिखरी हुई बूंदें तो सूखकर समाप्त हो जाती हैं
> लेकिन यही बूंदें मिलकर महासागर बन जाती हैं।''

वास्तव में सहकारिता आन्दोलन का उद्भव ही ऐसे काल में हुआ जब देश आर्थिक निष्क्रियता के दौर से गुजर रहा था। सहकारिता हमारी पंचायती व्यवस्था का ही दूसरा रूप है तथा इसे प्रजातंत्र की रीढ़ भी कहा जाता है। सहकारिता के विकास-क्रम से उन सुधारों का बोध होता है जिनकी मदद से राज्य तथा केन्द्रीय सरकारों ने निर्धन व्यक्तियों में सहकारिता की भावना जगाकर उन्हें अपनी सहायता स्वयं करने के लिए उचित प्रोत्साहन प्रदान किया था। अतः इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सहकारिता आन्दोलन स्वयं में गरीबी, शोषण व अन्याय के खिलाफ सामाजिक प्रतिक्रिया का प्रतीक रहा है। निर्धनता एवं शोषण पूंजीपतियों की देन है जिसका इलाज सहकारी आन्दोलन से ही संभव है। सामान्यतया देखा जाय तो सामूहिक प्रयासों एवं सहयोग के अभाव में कोई भी कल्याणकारी व लाभकारी कार्यक्रम अपने उद्देश्यों में सफल एवं सार्थक नहीं हो सकता, चाहे कितनी ही विपुल वित्तीय व्यवस्था उसके लिए क्यों न कर दी जाए। अतः स्वैच्छिक योगदान से ही निर्बल वर्ग का जीवन-स्तर ऊंचा उठाने की बात सोची जा सकती है। ऐसा हुआ भी है। हमारे देश में प्रगति व विकास के जितने भी सोपान पार किये गये हैं, उनमें कृषि एवं ग्रामीण विकास से संबंधित गतिविधियों में सहकारिता का दर्जा अव्वल है।

वर्तमान में हमारे देश में सहकारिता के उद्गम आधार साहूकारों एवं भूपतियों द्वारा कृषकों का शोषण था। देश में किसानों की गंभीर ऋण ग्रस्तता को देखते हुए सन् 1895 ई० में 'सर फेड्रिल निकल्सन' ने सहकारी साख की आवश्यकता पर बल दिया। इसी संदर्भ में विशेष अध्ययन हेतु सन् 1900 ई० में भारत सरकार ने 'सर एडवर्ड ला' की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसने भारत में सहकारी समितियों की स्थापना की सिफारिश की। फलस्वरूप ही आज से 88 वर्ष पूर्व 1904 ई० में 'सहकारिता साख समिति अधिनियम' के अंतर्गत भारत में सहकारी आन्दोलन का उदय हुआ। इसका प्रमुख उद्देश्य किसानों, शिल्पियों तथा अन्य सीमित साधनों के व्यक्तियों में बचत, स्व-सहायता तथा सहयोग को बढ़ावा देना था। सन् 1912 में सहकारी समिति अधिनियम पारित करके साख समितियों के साथ-साथ गैर साख समितियों को भी मान्यता दे दी गई। देश में आज अनेक संस्थाएं सहकारिता आन्दोलन को सफल बनाने का प्रयास कर रही हैं। इनमें राष्ट्रीय स्तर की सहकारी विपणन, सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक, उपभोक्ता

सहकारी आवास, औद्योगिक समिति, सहकारी कताई मिल, डेयरी, चीनी मिल, श्रमिक समिति हथकरघा एवं मत्स्यजीवी सहकारिता आदि के परिसंघ शामिल हैं। इससे सहकारिता के बुनियादी ढाचे को नई दिशा मिली है । यद्यपि शुरू के वर्षों में सहकारिता के विकास की गति काफी धीमी रही परन्तु बाद में इसका तीव्र गति से विकास हुआ। सन् 1919 ई० में सहकारी समितियों को विकसित करने का भार राज्य सरकारों को दिया गया ताकि इसका संतुलित विकास हो सके।

सहकारिता आन्दोलन अपने विकास हेतु भिन्न-भिन्न चरणों से होकर गुजरा है, जिनमें कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है:—

(क) सहकारी आन्दोलन का प्रारंभिक काल (1904-1911)

(ख) द्रुतगति से सहकारी आन्दोलन के विस्तार का काल (1912-1918)

(ग) सहकारी आन्दोलन के अनियोजित विस्तार का काल (1919-1929)

(घ) सहकारी आन्दोलन के सुदृढीकरण व पुर्नसंगठन का काल (1930-1939)

(ड) सहकारी आन्दोलन के पुनरूद्धार का काल (1939-1947)

सहकारी आन्दोलन के उपरोक्त विभिन्न चरणों को स्वतंत्रता से पूर्व विकास का विभिन्न काल भी कहा गया है।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी की काल ने भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं को अस्त-व्यस्त कर दिया। किसानों की आय काफी कम हो गयी तथा उपर से कर्ज का बोझ बढ़ गया। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध का काल सहकारी आन्दोलन के लिए स्वर्णिम काल रहा। इस काल में किसानों तथा अन्य कारीगरों व शिल्पियों द्वारा निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाने से ऋण की वसूली काफी बढ़ गई।

हमारे देश में सामाजिक और आर्थिक संरचना को साकार करने के लिए सहकारिता एक बड़ी जरूरत है। इस अद्वितीय आर्थिक प्रणाली से कृषि एवं ग्रामीण उद्योगों के लिए नई तकनीक, सुव्यवस्थित बाजार आदि अन्य बहुत सी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति अपेक्षाकृत काफी आसान हो गयी है। परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि संभव हुई है साथ ही किसानों को उनकी उपज का समुचित मूल्य मिलने के कारण उनकी आर्थिक दशा में भी सुधार आया है। सहकारी संस्थाओं के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे अधिकाधिक लाभार्जन के स्थान पर सेवा के उद्देश्य से कार्य करती हैं। यही कारण है कि हमारे देश में, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और अन्य अनेक विद्वानों ने सहकारिता का जोरदार समर्थन ही नहीं किया वरन् इसे नैतिक एवं आर्थिक उत्थान का मार्ग भी बतलाया है। अपनी अनूठी विशेषताओं के कारण सहकारी समितियों को गरीब आदमी को शोषण से बचाने तथा कृषि का विकास करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है। भारत में सहकारिता के प्रवर्त्तन से लेकर आज के विकास तक सरकार ने निरन्तर बढ़ावा दिया है। कारण कि यह राष्ट्रीय विकास के लिए काफी महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। सहकारी आन्दोलन ने काफी प्रगति की है, आज यह साख तथा गैर साख दोनों क्षेत्रों में फैल गया है। एक विशेषज्ञ के अनुसार, विश्व का कोई भी आन्दोलन संस्थाकरण, सदस्यता तथा कार्यों में इसकी बराबरी नहीं कर सकता। परन्तु इन सभी परिमाणात्मक वृद्धियों के बावजूद सत्य यह है कि इसमें गुणात्मक वृद्धि अपेक्षित स्तर तक नहीं हुई, जिसकी वजह से यह पूर्ण सफल नहीं रहा। इस आन्दोलन की मुख्य कमजोरियां निम्न हैं, जो इसकी सफलता के मार्ग में बाधक रही हैं :

(1) सरकार पर आश्रित होने के कारण, यह आन्दोलन सहकारी से ज्यादा सरकारी आन्दोलन बन कर रह गया है। कारण कि सरकार के दबाव में समितियां स्थापित हो जाती हैं, परन्तु सहकारिता के सिद्धान्तों के अनरूप नहीं, जिसके कारण यह सुचारू रूप से चल नहीं पाती हैं।

(2) निजी क्षेत्र में व्यवसायी लोग संगठन बनाकर सहकारी क्षेत्र के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे इसका विकास अवरूद्ध होता है।

(3) ग्रामीण क्षेत्रों में सदैव सहकारी साख समितियों पर अधिक ध्यान दिया जाता रहा है। लेकिन वास्तविकता यह है कि किसानों को केवल साख की ही जरूरत नहीं होती, बल्कि उन्हें कृषि उपज के विपणन, कृषि उत्पादन को बढ़ाने की भी समस्याएं होती हैं।

(4) अल्पकालीन ऋण, मध्यकालीन ऋण तथा दीर्घकालीन ऋणों के विस्तार में मुख्य समस्या (ओवर ड्यू) ऋणों की भी है। इससे सहकारी बैंकों को अपनी वित्तीय स्थिति ठीक रखने में परेशानी होती है।

(5) सहकारी साख समितियों के पदाधिकारियों तथा व्यवस्थापकों द्वारा धार्मिक एवं जातीय आधार पर पक्षपात किया जाता है। इन सब कारणों से आन्दोलन का कदम आगे की बजाय पीछे हट रहा है।

(6) सहकारी समितियों में उच्च सीमा तक भ्रष्टाचार व्याप्त है जो उनकी प्रगति का अवरोधक है।

(7) सहकारी आन्दोलन में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। विभिन्न राज्यों में सहकारी समितियों का वितरण समान नहीं है साथ ही एक राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में भी यह असमानता व्याप्त है।

(8) हमारे देश में सहकारी आन्दोलन की असफलता का एक कारण यह भी है कि सहकारी समितियों में आपस में सहयोग बहुत कम है। बहुत से राज्यों में तो यह देखा गया है कि ये संस्थाएं आपस में सहयोग के बदले संघर्ष करती हैं।

(9) सहकारी आन्दोलन से पर्याप्त समन्वय की कमी भी इसकी असफलता का प्रमुख कारण रहा है। प्राय: एक ही गांव में साख, विपणन, कृषि, दुग्ध उत्पादन, पशुपालन आदि से सम्बंधित समितियां कार्यरत रहती हैं। परन्तु उनमें समन्वय का अभाव पाया जाता है।

(10) अन्त में भारत में सहकारी आन्दोलन गुटबंदी, दलबंदी व भ्रष्टाचार से सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है। नौकरशाही व राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण प्रशिक्षित व कुशल कामगारों को समुचित स्थान पर नियुक्त नहीं किया जाता है।

सहकारी आन्दोलन की कमजोरियों को निम्न तरीकों से दूर कर प्रगति पथ पर लाया जा सकता है :—

(क) अनार्थिक समितियों को सदा के लिए समाप्त कर दिया जाय।

(ख) सहकारी समितियों के अधिकारियों व कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाय।

(ग) सहकारी साख समितियों व सहकारी विपणन समितियों के बीच समन्वय पैदा किया जाय।

(घ) केन्द्रीय और राज्य सहकारी बैंकों को पुनर्गठित किया जाय ताकि वे संबंधित समितियों को समुचित ऋण प्रदान कर सकें।

(ङ) एक उद्देश्यीय सहकारी साख समितियों को बहुद्देश्यीय बनाया जाय।

(च) सहकारी आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ायी जाय।

(छ) इसकी सफलता हेतु मंत्रियों व अधिकारियों का औपचारिक निरीक्षण हो। इससे भ्रष्टाचार पर अंकुश लगेगा।

(ज) सरकारी मीडिया द्वारा इसका प्रचार-प्रसार किया जाय।

(झ) बढ़ती हुई अवधि पर ऋणों की समस्या को सुलझाने के लिए सख्त कदम उठाए जायें। साथ ही ऋणों के उचित उपयोग को देखने के लिए निरीक्षण दल को और अधिक मजबूत बनाया जाय।

(ञ) राजनीतिक हस्तक्षेप, दलबंदी व गुटबंदी पर रोक लगायी जाय।

अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भारत जैसे देश की बहुमुखी प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि सहकारिता का भी चतुर्दिक विकास हो। इसके संचालन में राजनैतिक हस्तक्षेप को रोका जाय। सहकारिता का भविष्य उज्ज्वल है— आवश्यकता है केवल मन और मस्तिष्क से समर्पित कार्यकत्ताओं की जो इसे एक 'जन आन्दोलन' बना सकें।

(व्याख्याता, महिला कॉलेज, बड़हिया)
ग्राम पो०– जैतपुर, थाना — बड़हिया
जिला—मुंगेर, (बिहार)

ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक एजेन्सियां

□ सुबह सिंह यादव□

आधुनिक युग में स्वैच्छिक एजेन्सियां प्रजातांत्रिक मूल्यों को बनाये रखने तथा उनके उन्नयन का महत्वपूर्ण साधन हो सकती हैं। किसी भी देश में चाहे वह विकसित हो या नव विकसित, ये एजेन्सियां गरीबतम व्यक्ति को स्व-सहायता प्रदान करके, देश के भौतिक साधनों को गतिशील करके, निजी क्षेत्र की संस्थाओं को स्फूर्ति प्रदान करके, स्व-स्फूर्त विकास की प्रक्रिया को आरंभिक स्वरुप देकर, शासन की प्रक्रिया में लोगों को सहायता प्रदान कर, विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। पिछले वर्षों में, गरीब लोगों तक विकास के लाभ को ले जाने के लिए स्वैच्छिक गतिविधियों में कार्य वृद्धि हुई है। इसके चार कारण हैं—

(1) संगठित सरकारी मशीनरी से हुआ मोहभंग, जो ग्रामीण विकास के संदर्भ में काम करता दिखाई नहीं दिया।

(2) सरकारी प्रणाली से बाहर काम कर रही कुछ उच्च-अभिप्रेरित शक्तियों एवं समूहों की सफलता। यद्यपि इन्होंने श्रेष्ठता की कुछ 'पाकेट्स' में ही कार्य किया है। इनमें से कुछ तो अपनी उपलब्धियों को परियोजित करने एवं अपने आपको शक्ति सत्ता के ध्यान में लाने में चुस्त दिखाई देती हैं।

(3) सत्ता शक्ति द्वारा येनकेन प्रकार कार्य करवाना, इन कार्यों को इधर-उधर गतिशील करना तथा देश के विकास को तेज करने के लिए गरीबी हटाने के नये-नये तरीकों का प्रयोग करना।

स्वैच्छिक एजेन्सियाँ क्या हैं ? : एक एजेन्सी चाहे वह संगठित हो या असंगठित समाज के कल्याण के लिये कार्य करती है। यह केवल एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह हो सकती है। इसे प्रायः गैर-सरकारी संगठन के नाम से जानते हैं।

इनकी विलक्षणताएं : एक स्वैच्छिक एजेन्सी को अधिक प्रासंगिक, प्रभावोत्पादक बनाने एवं ग्रामीण विकास में इसकी अर्थपूर्ण भूमिका की सुनिश्चितता के लिये पूर्णतः स्वैच्छिक एवं स्वतंत्र निकाय बनकर रहना होगा। उनके कोष प्राप्त करने का जरिया ऐसा नहीं होना चाहिये कि वे अपना स्वैच्छिक एवं स्वतंत्र रुप ही खो बैठें। भारत की सातवीं योजना के दस्तावेज में, सरकार ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सहायता के लिये स्वैच्छिक संस्थाओं को सूचीबद्ध करने के निम्नांकित मानदंड सुझाये हैं।

(1) एजेन्सी एक कानूनी सत्ता होनी चाहिए।

(2) यह ग्रामीण क्षेत्र में आधारित हो तथा वहां कम से कम तीन वर्ष से काम कर रही हो।

(3) इसके व्यापाक आधार वाले उद्देश्य हों, जैसे— सम्पूर्ण समाज, विशेषकर गरीब वर्गों की समाजार्थिक आवश्यकताओं को पूरा करना।

(4) इसमें कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिये आवश्यक लचीलापन तथा व्यावसायिक क्षमता होनी चाहिये।

(5) इसकी गतिविधियाँ बिना किसी धर्म, जाति, लिंग समुदाय आदि के भेदभाव के सभी नागरिकों के लिये खुली होनी चाहिये।

(6) इसके पदाधिकारी किसी राजनीतिक दल के निर्वाचित सदस्य नहीं होने चाहिये।

(7) इसे यह घोषणा करनी चाहिये कि वह ग्रामीण विकास उद्देश्यों के लिये संवैधानिक तरीके अपनायेगी।

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हुआ कि स्वैच्छिक एजेंसियाँ ऐसी गैर-सरकारी एजेंसियाँ हैं जो गरीब, अपंग तथा दूसरे निराश्रितों को सहायता करने के मूल उद्देश्य को लेकर चलती हैं। ये एजेन्सियाँ बहुत अधिक गरीब तथा असहाय लोगों को मामूली लागत अथवा बिना किसी लागत के साज सामान, तकनीक तथा प्रशासनिक व सामाजिक सेवायें प्रदान करती हैं। इनका सरकार से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि इन्हें सराकर से कोई लेना-देना ही नहीं है। इन्हें निश्चित रूप से सरकार के साथ समन्वय स्थापित करना ही पड़ता है जिससे असहाय लोगों तक पहुंचने के साधनों को प्राप्त करने में सहायता मिल सके। आम जनता, सरकार तथा विदेशी निकायों तथा प्रस्तावित लक्ष्य समूह का विश्वास जीतने के लिये इन्हें गैर-राजनीतिक होना चाहिये। इन एजेन्सियों को अपने आप को तटस्थ रखना काफी मुश्किल है क्योंकि इन संगठनों को गैर-लाभकारी संगठन होने के कारण कुछ वित्तीय एवं आधारित संरचना संबंधी सहायता के लिए अधिकारियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

उपरोक्त मानदंडों के अतिरिक्त स्वैच्छिक एजेन्सी के पंजीकृत होने से पूर्व इसके आय के स्रोतों तथा दूसरे व्यवसायों के बारे में पूर्व सूचना एकत्रित करनी चाहिये। केवल वे ही स्वैच्छिक संस्थाएं जिनके पास सुचारू एवं प्रभावी रूप से कार्य करने के लिए अनवरत तथा विश्वसनीय वित्तीय सम्बल है, पंजीकृत होनी चाहिये। स्वैच्छिक एजेंसियों

को चयनित करते समय पूर्व सावधानी अपनाने का पूर्ण प्रयास करना चाहिये। ग्रामीण विकास को चलाने के लिये उनके पास ठीक तरह की अभिप्रेरणा, कल्पना तथा बुद्धिमत्ता होनी चाहिये। केवल उन्हीं एजेन्सियों को इस क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति दी जानी चाहिये जिनके पास लक्षित समाज (जिसकी ये सेवा करना चाहती हैं) की पर्याप्त सामाजिक एवं आर्थिक समझ हो। उन्हें एक आचार संहिता भी निर्धारित करनी चाहिये जो सरकार से कोष प्राप्त करने वाली सभी एजेन्सियों पर लागू हो।

महत्व एवं विकास : इन दिनों समस्त विश्व में इन एजेंसियों को प्रोत्साहित करने पर जोर है। दुनिया के समस्त देशों ने यह महसूस किया है कि निकट भविष्य के विकास प्रक्रिया के ढांचे में ये एजेन्सियाँ ही छायी रहेंगी। ये एजेंसियां न केवल देश के घरेलू मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं, बल्कि विश्व शांति तथा सामाजिक कल्याण गतिविधियों को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

भारत जैसे देश में स्वैच्छिक एजेंसियाँ नई नहीं हैं। हमारे यहां स्वैच्छिक सेवा की धारणा बहुत प्राचीन है। ये कई दशाब्दियों से विकासगत कार्यों में संलग्न हैं। हाल ही के वर्षों में इनकी संख्या में वृद्धि हुई है। ग्रामीण विकास के संदर्भ में सरकारी एजेन्सियां गरीब लोगों तक पहुंचने में असमर्थ रही हैं। वर्षों से ग्रामीण विकास योजनाओं पर बड़ी मात्रा में धनराशि खर्च की गई है, लेकिन पात्र ग्रामीण गरीबों तक ये लाभ अभी तक नहीं पहुंच पाये हैं।

भारत में लगभग 6 लाख गांव हैं तथा हमें 5,400 विकास खंडों में करीब 6,25,00 ग्राम स्तरीय तथा 6,200 क्षेत्र स्तरीय स्वैच्छिक योजनाओं की आवश्यकता होती दिखाई दे रही है। यह कल्पनातीत लगता है कि इतनी संख्या में समर्पित गांवों की ओर उत्साह से आकर्षित होंगी। एक मोटे अनुमान के अनुसार भारत में करीब 20,000 स्वैच्छिक एजेन्सियां हैं जो सरकार द्वारा प्रायोजित ग्रामीण विकास कार्य से सम्बद्ध हैं। सार्वजनिक सहयोग तथा बाल विकास की राष्ट्रीय संस्था (एन.पी. सी.सी.डी) ने इनमें से करीब 700 को अभिचिन्हित किया है जो प्राथमिक रूप से ग्रामीण विकास से संबंधित हैं। उनकी कार्य शैली के लक्षण हैं : नवप्रर्वतन, परिचालन, लचीलापन, बदलती आवश्यकताओं की संवेदनशीलता तथा कार्यकारी लोगों की अभिप्रेरणा का उच्च स्तर।

इन एजेन्सियों में से कुछ तो ग्रामीण गरीबों की सहायता में प्रत्यक्षतः जुड़ी हुई हैं। गरीबों को विभिन्न गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लाभ दिलवाने में सहायता देती हैं, कुछ दूसरी एजेन्सियां ग्रामीण रूपान्तरण में संलग्न संगठनों के कार्यकर्ताओं को उनके अनुभव के पारस्परिक विनिमय के दृष्टिकोण से संगोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में एक साथ इकट्ठा करती हैं।

अब प्रश्न यह है कि स्वतंत्रता के बाद भारत में स्वैच्छिक एजेन्सियों का कितना योगदान रहा है ? वर्तमान में क्या स्थिति है ? वस्तुतः ऐसा कोई मूल्यांकन अध्ययन उपलब्ध नहीं है जिसकी कोई ठोस जानकारी मिल सके। हाँ, सामाजिक कल्याण गतिविधियों, खेलकूद आदि के क्षेत्र में इनके योगदान के कई साक्ष्य विद्यमान हैं, जहाँ स्वैच्छिक एजेन्सियां अपनी क्षमताओं के अनुसार कार्य कर रही हैं। कम से कम एक तथ्य पर तो सहमत होना ही पड़ेगा कि स्वतंत्रता के बाद भारत में स्वैच्छिक एजेन्सियों को पोषित करने तथा इन्हें मजबूत करने के बारे में गंभीर चेतना दिखाई। सातवीं योजना में इस सिद्धान्त पर बल दिया गया कि पहले की अपेक्षा अब स्वैच्छिक कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। लेकिन सरकारी आदेश से स्वैच्छिक एजेन्सी सृजित नहीं की जा सकती। सरकार की सहायता तो केवल इनके विकास की बाधा हटाने में सहायक होगी। अतः इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि उन्हें बढ़ने तथा अपने उद्देश्यों को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिये कैसे समर्थ बनाया जाये।

कार्य क्षेत्र एवं क्रियाकलाप : वर्ष पर्यन्त ग्रामीण विकास के क्षेत्रीय स्वरूप में वृद्धि हुई है तथा इसकी दिशा में भी महत्वपूर्ण मोड़ आया है। परिणामस्वरूप ग्रामीण विकास कार्यों को चलाना, अकेले सरकार के लिये संभव नहीं है। इसके लिये सहभागिता के रूप में सरकार का सहयोग आवश्यक है। ग्रामीण विकास की योजनाओं तथा स्वैच्छिक एजेन्सियों की सेवाओं को पहचाना जाना जाहिये। वर्तमान में भारत में इन एजेन्सियों की भूमिका केवल अपंग व्यक्तियों, निराश्रित महिलाओं के लिये आवास व्यवस्था संचालित करने, नेत्रहीनों के लिये स्कूल चलाने, वृद्धावस्था घरों की व्यवस्थाओं को चलाने मात्र तक सीमित रह गयी है। कुछ थोड़े से लोगों को छोड़कर भारत में स्वैच्छिक एजेन्सियों में सम्बद्ध प्राधिकारी तथा सरकार द्वारा मनोनीत प्रभावशाली लोग हैं। ऐसा लगता है कि ये स्वैच्छिक संगठन सरकार द्वारा चलाई जाने वाली एजेन्सियों से अधिक कुछ नहीं है। लेकिन स्थिति को तब तक नहीं सुधारा जा सकता जब तक कि स्वैच्छिक आंदोलन जीवन का एक तरीका नहीं बन जाता।

वास्तव में एक स्वैच्छिक एजेन्सी अपने लाभार्थियों के ट्रस्टी के

रूप में कार्य करती है। यह स्वेच्छा से कार्य नहीं कर सकती। उपभोक्ता संरक्षण के सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में स्वैच्छिक आंदोलन के आधार को विस्तृत करने की आवश्यकता है। वास्तव में मताधिकार के बाद उपभोक्ता संरक्षण किसी भी देश के स्वतन्त्र नागरिकों के जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है जो जनता को महत्ता, न्याय तथा विश्वास का भान कराता है। उपभोक्ता अधिकारों के लिए इन एजेन्सियों को प्रोत्साहित करना होगा। तब ये पथप्रदर्शक की तरह कार्य कर सकती हैं। ग्रामीण विकास के लिये सरकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में इनकी शक्ति तथा अभिप्रेरणा का पूर्ण उपयोग करना चाहिये। ये प्रशासन तथा लोगों के बीच कड़ी के रूप में कार्य कर सकती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन लाने, विशेषकर अभिप्रेरणा तथा जनचेतना द्वारा लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने में उत्प्रेरक के रूप में इनकी क्षमता सर्वविदित है।

ये लोगों को विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं के लाभों को प्राप्त करने में अनुभव की गई कठिनाइयों को सरकार के ध्यान में ला सकती है तथा सरकार की विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में हो रही अनियमितताओं की ओर ध्यान आकर्षित कर सकती है। साथ ही इस सुझाव पर जोर दे सकती हैं कि ये योजनाएं किस प्रकार अपने लक्ष्य समूह तक बिना किसी रिसाव के पहुंचे। इस बात को सुनिश्चित करना कि ग्रामीण कार्यक्रमों के लिये आवंटित कोषों का उपयुक्त प्रयोग हो, इनका आदर्शवादी कर्त्तव्य है। ये स्थानीय लोगों को उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधन सृजित करने के लिये भी अभिप्रेरित कर सकती हैं, जो सरकार की परिधि से बाहर आते हैं।

स्वैच्छिक एजेन्सियाँ सरकारी विभागों को गांवों में कार्यक्रम बनवाने एवं पुरस्कार प्रदान करने में सहायता प्रदान कर सकती हैं। ये ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिये हितग्राहियों को अभिचिन्हित करने के काम के लिये उत्तरदायी सरकारी विभागों का सहयोग कर पात्र लाभार्थियों के चयन को सुनिश्चित कर सकती हैं। ग्रामीण विकास लाभार्थियों को बैंकों से शीघ्र ऋण स्वीकार कराने में इन एजेंसियों की अनुवर्ती कार्यवाही काफी लोकप्रिय हुई है।

प्रबोधन एक ऐसा दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है जहां स्वैच्छिक एजेन्सियाँ सहायक हो सकती हैं। ये क्षेत्र में क्रियान्वित किये जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों के बारे में सूचना एकत्रित करके सरकारी एजेन्सियों एवं नीति-निर्माताओं को सशक्त प्रतिपोषक सामग्री प्रदान कर सकती है। कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाओं पर छोटी अवधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं ग्रामीण गरीब के संभावित उपलब्ध लाभों को अधिकाधिक करने हेतु कौशल प्रदान करने के कार्य भविष्य में इन एजेन्सियों के केन्द्र बिन्दु बने रहेंगे। अधिकांश ग्रामीण गरीबों को उनके लाभों के लिये उपलब्ध विकास कार्यक्रमों तथा सुविधाओं का ज्ञान ही नहीं है। स्वैच्छिक संस्थाएं उन्हें शिक्षित करने, चेतना जगाने तथा आधारभूत स्तर पर ग्रामीण गरीब को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं ताकि समाज के कल्याण हेतु उन्हें सामूहिक लाभ उपलब्ध कराया जा सके। प्रौढ़ शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ स्वैच्छिक संस्थाएं आधारभूत कार्य में सरकारी कर्मचारियों को रास्ता दिखा सकती हैं। वे साक्षरता के बारे में चेतना जागृत कर सकती हैं तथा क्षेत्र में अनुदेशकों तथा पर्यवेक्षकों पर निगरानी रख सकती हैं। ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने के लिये स्वैच्छिक एजेंसियाँ धुआं रहित चूल्हों व छोटे गोबर गैस संयंत्रों को लोकप्रिय बना सकती हैं। इसके अतिरिक्त छोटी तथा मध्यवर्ती तकनीक, जो अभी भी प्रयोगशालाओं तक सीमित है, उसे ये एजेंसियां उन क्षेत्रों में ले जा सकती हैं, जहां उनकी बहुत अधिक आवश्यकता है।

दूसरे क्षेत्र जिन्हें स्वैच्छिक एजेंसियों के कार्यक्षेत्र में लाया जाना चाहिये, वे हैं— महिलाओं के अधिकार, प्राथमिक स्वास्थ्य, बच्चों को बुराइयों से बचाना तथा गरीब बच्चों एवं नौजवानों को शिक्षा, शुल्क, कपड़े, भोजन आदि प्रदान करना। स्वैच्छिक आंदोलन को सामाजिक कल्याण, बच्चों की देखभाल, दहेज प्रतिबंध, साम्प्रदायिक भावनाओं के विरुद्ध शिक्षा, पशुओं के प्रति क्रूरता रोकना, बेरोजगारी के विरूद्ध लड़ने आदि क्षेत्रों में प्रोत्साहित किया जा सकता है। स्वैच्छिक एजेंसियों को कार्यक्रम लागू करने वाली संस्थाओं, जनता से व्यवहार रखने वाले संगठनों, लाइसेंसिंग प्राधिकारियों, सार्वजनिक कार्य विभाग आदि के साथ तालमेल कायम करना चाहिए। आरंभ में सरकार की सहायता से राष्ट्रीय, राज्य तथा जिला स्तर पर जनता से सीधा सम्पर्क रखने वाले विभागों की सहायता करने के लिये स्वैच्छिक एजेन्सियों का बड़ा जाल बिछाकर इनकी स्पष्ट भूमिका निर्धारित करनी होगी। स्वैच्छिक आंदोलन को प्रभावशाली बनाने हेतु इन एजेन्सियों को सम्बद्ध प्राधिकारियों से सम्पर्क रखने का मौलिक अधिकार दिया जाना चाहिये। यहां तक कि आवश्यक सूचना मंगवाना भी इन स्वैच्छिक संगठनों में निहित होना चाहिये। महत्वपूर्ण क्षेत्रों में इनके निष्कर्षों तथा सुझावों पर सरकारी विभागों तथा प्राधिकारियों द्वारा पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिये।

संक्षेप में एजेंसियों के कार्यकलापों का बिन्दुवार विश्लेषण इस

प्रकार हैं:

(I) मानव संसाधन विकास : इस उद्देश्य के अन्तर्गत एक एजेन्सी को उस दिन के लिये योजना बनानी चाहिये जब वह ग्रामीणों को अपने विकास को स्वयं करने के लिए घटनास्थल पर छोड़ेगी। अत: संभाव्य नेताओं तथा उद्यमियों को अभिचिन्हित एवं प्रशिक्षित करना चाहिये। इससे गांव से ही लिये गये लोगों को प्रशिक्षिण तथा गांव में ही समूह संवर्द्धक के रूप में उन्हें रोजगार पर लगाने से अधिकतम प्रतिफल मिलेगा क्योंकि एजेन्सी द्वारा दूसरी जगह अपने कार्य परिवर्तित करने के बाद भी ये लोग वहाँ अपना कार्य जारी रख सकते हैं।

(II) आर्थिक गतिविधियाँ: यदि लक्ष्य समूह का आर्थिक विकास उन्नत समुदायों के लिये खतरा नहीं बनता है तो इन एजेन्सियों की गतिविधियाँ सफल होंगी और यदि उन्नत समुदायों को खतरा उत्पन्न होता है तो ये तब तक सफल नहीं होंगी जब तक कि सरकार का सशक्त समर्थन न हो। यह समर्थन आजकल कुछ कठिन है क्योंकि सरकारें प्राय: नुकसान होने के बाद प्रतिक्रिया करती हैं। अत: सरकार द्वारा नुकसान होने से पूर्व ही कार्यवाही करने की जरूरत है।

(III) सामाजिक कल्याण गतिविधियाँ: इसे दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

— कानूनी अधिकारों का संरक्षण, श्रम के लिये उचित मजदूरी का अधिकार, आवासीय भूमि का अधिकार, बंधुआ श्रम से मुक्ति, सामुदायिक परिसम्पत्ति तथा सेवा का अधिकार (इसकी एक प्रशाखा हरिजनों के लिये अलग से पीने के पानी की व्यवस्था होगी) प्रताड़ना, झूठे फौजदारी मुकदमें, महिलाओं के साथ छेड़छाड़ आदि से संरक्षण, सहायता आदि।

— सामान्य स्वास्थ्य एवं चिकित्सा जैसी नई सेवाओं का प्रावधान, बाल एवं मातृत्व देखभाल, परिवार कल्याण अभिप्रेरणा, सफाई प्रबंध, शिक्षा, साफ सुथरा पेय जल।

सामाजिक कल्याण गतिविधियों से यद्यपि कुछ विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के साथ संघर्ष हो सकता है, लेकिन सशक्त नागरिक प्रशासन के समर्थन तथा अनुकूल राजनीतिक जलवायु से इनको सफल बनाया जा सकता है।

प्रत्याशित भूमिका: भारत जैसे विकासशील देश में स्वैच्छिक एजेंसियों को अपनी भूमिका के संदर्भ में चार पहलूओं पर विचार करना चाहिये —

प्रथम पहलू वैयक्तिक आश्रित प्रत्यक्ष सहायता से संबंधित हो सकता है जैसे नगरपालिका सेवायें अथवा स्वास्थ्य, राशन, सफाई प्रबंध, अंधों व निराश्रितों की देखभाल, घरों को ठीक से चलाने जैसे विभिन्न सार्वजनिक विभागों की सेवाएं सुनिश्चित करना।

दूसरी भूमिका शिक्षा, सूचना तथा जनता को ज्ञान सम्पन्न करने की है।

तीसरी भूमिका नागरिकों को न्याय एवं समता प्रदान करने में सामाजिक वकालत की हो सकती है। स्वैच्छिक ऐजन्सियाँ विकास, सामाजिक कल्याण, रोजगार कार्यक्रमों, प्रौढ़ शिक्षा तथा गरीब लोगों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने जैसी योजनाओं से संबंधित हो सकती हैं।

चतुर्थ भूमिका शोध, परामर्श, मूल्यांकन, प्रबोधन तथा राष्ट्रीय, राज्य, एवं स्थानीय स्तर पर सरकार व सार्वजनिक विभागों के निष्पादन पर वास्तविक निगरानी रखने की है। इस भूमिका की कमी का एक कारण सरकार तथा प्रशासन की स्वैच्छिक योजनाओं के साथ सत्ता बंटाने की अनिच्छा तथा इनकी आलोचना करना है। शोध, मूल्यांकन, प्रबोधन आदि के क्षेत्र में भूमिका अदा करने हेतु स्वैच्छिक एजेंसियों को विभिन्न स्तरों पर कुछ अधिकारिक सूचनाओं, कोष तथा कुछ दस्तावेज प्राप्त करने की आवश्यकता होगी जिसे कोई भी सत्ता सोपान प्रदान नहीं करना चाहेगा।

भारत की वर्तमान परिस्थितियों में ऊपर वर्णित चार भूमिकाओं में से, स्वैच्छिक एजेंसियों द्वारा कम से कम प्रथम तीन भूमिकाओं को अविलम्ब अपनाने की महती आवश्यकता है। प्रारंभ में विशेष श्रेणी के लोगों के पुनर्वास जैसी कुछ प्रारंभिक सामाजिक सेवाओं को अपनाया जाना चाहिए। सलाह देने, परामर्श देने, पुनर्स्थापित कार्यक्रमों में प्रशिक्षण देने तथा विभिन्न आयु समूहों के दरिद्र लोगों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप नैतिक व सामाजिक शिक्षा देने में सहायता लेनी चाहिए। आज इस बात की आवश्यकता है कि स्वैच्छिक एजेन्सियों को ग्रंथालय सेवाओं के प्रशासन को, जिसमें सूचना केन्द्र चलाना, वीडियो एवं टी.वी. सुविधायें प्रदान करना भी शामिल है, अपने हाथ में लेना चाहिये। साथ ही समाज के महिला, बाल एवं वृद्ध जैसे वर्गों को जागृत करने के लिये जन माध्यमों की क्रियाएं भी अपनी भूमिका में शामिल करनी चाहिये।

सामाजिक वकालत के क्षेत्र में इन एजेन्सियों को विभिन्न संगठनों, प्राधिकारियों तथा सत्ताधारी लोगों के पास, के लम्बित मामलों में अनुवर्ती कार्य करना है। इस भूमिका के निष्पादन के लिये इन एजेन्सियों को विभिन्न विभागों के पास लोगों के मामलों की पैरवी तथा अन्य कार्यवाही करने के लिये सम्बद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त

ये एजेन्सियाँ सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी निकायों और गैर सरकारी संगठनों के बीच एक विस्तृत कार्यकारी संबंध कायम कर सकती हैं।न्याय प्रशासन, संसद एवं राज्य विधान मंडलों में भी इनकी सहायता ली जा सकती है।

पूर्व आवश्यकताएं:— स्वैच्छिक एजेंसियों को चलाने के लिये कुछ महत्वपूर्ण आवश्यकताएं निम्नानुसार हैं:

1. वित्तीय, प्रबंधकीय तथा प्रशासनिक विशेषज्ञता। इसके सदस्यों द्वारा एजेन्सी के कार्यों को पर्याप्त समय देना, समर्पण की भावना से अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना।

2. उत्साही स्वयंसेवियों की मानदेय सेवाओं के साथ-साथ वेतनभोगी स्थायी कर्मचारियों की व्यवस्था।

3. सरकार द्वारा संसाधनों, कर्मचारियों, आधारित संरचना, मार्गदर्शन आदि क्षेत्रों में इन एजेंसियों की सहायता करना ताकि इनका नैतिक बल बढ़ सके।

4. एक सौपानिक संगठन का निर्माण जो राष्ट्रीय स्तर से गांव के आधारभूत स्तर तक अपनी सम्बद्ध इकाइयों के माध्यम से गरीबों की सेवा करके उनके हितों की रक्षा कर सके।

5. मौद्रिक संसाधन बढ़ाने के साथ सरकारी अनुदान, निजीदान, ऋण, स्थायी जमा, सहायिका ब्याज, चंदा, किराया आदि की व्यवस्था करना।

6. 'न लाभ न हानि' के सिद्धान्त पर चलना। इनका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होना चाहिये।

7. विभिन्न स्वैच्छिक संगठनों को आपसी सौहार्द्र की भावना तथा समन्वय से काम करना चाहिये।

8. एक-दूसरे से दृष्टिकोण, अनुभव, तथा व्यवहारों पर आपसी विचार विनिमय करें तथा एक-दूसरे की पूरक होने के साथ-साथ विभिन्न तरह की पारस्परिक सहायता।

9. विभिन्न एजेन्सियों को एक ही तरह की गतिविधियों को अपनाने से बचना चाहिये।

10. स्वैच्छिक एजेन्सियों, सरकार तथा दूसरी वैधानिक संस्थाओं के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंध हों।

11. सरकार तथा दूसरे वैधानिक निकायों को चाहिये कि कल्याण तथा स्व-सहायता के क्षेत्र में स्वैच्छिक एजेन्सियों को वास्तविक एजेन्ट मानकर इनका आदर करें। इन्हें विकास का सामान्य एवं समान हिस्सेदार मानें। सरकार को धीरे-धीरे अधिकतम कल्याणकारी गतिविधियों को इन एजेन्सियों के लिये छोड़ देना चाहिये।

12. ये एजेन्सियां राजनीति में लिप्त हुये बिना पक्षपात रहित तरीके से काम करें तथा सरकार भी बिना किसी भेदभाव के इन्हें अनुदान व दूसरी सहायता समय पर जारी करे।

जवाबदेही सुनिश्चित करना: जवाबदेही निर्धारण एवं सुनिश्चियन एक निर्णायक एवं कठिन पहलू है, जहां कई बार भ्रम भी उत्पन्न हो जाता है। यह कैसे हो तथा इसे लागू करने वाली एजेन्सी कौन हो ? दंड देने की प्रक्रिया क्या हो ? इन प्रश्नों को हल करने के लिये स्वैच्छिक एजेन्सी पंजीयक नामक एक प्राधिकारी का सृजन करके, भारतीय कम्पनी एक्ट की तरह एक राष्ट्रीय स्वैच्छिक एजेन्सी अधिनियम बनाया जाये। इस पंजीयक को पर्यवेक्षण, निरीक्षण तथा प्रस्तावित स्वैच्छिक एजेन्सी अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के क्रियान्वन का प्रभार दिया जाना चाहिये ताकि यह दंडात्मक शक्तियों का प्रयोग करके जवाबदेही सुनिश्चित कर सके।

प्रतिबंध एवं समस्याएं: भारत में लोग उत्साही एवं इच्छुक होने के बावजूद भी स्वैच्छिक एजेन्सियों के कार्यक्रमों को अपनाने में भयभीत एवं शर्मीले हैं। इसलिये ये एजेन्सियाँ ठीक से नहीं चल पा रही हैं। लक्ष्यों की प्राप्ति, कोषों, अनुदान अथवा अन्य कार्यालयीन अथवा प्रशासनिक सहायता का उपभोग करने में भी इनका प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा है। सरकार तथा सम्बद्ध संस्थाओं का उनसे मोहभंग हो रहा है। इन एजेन्सियों के बनने से पूर्व ही इनमें लोगों का विश्वास गिरता जा रहा है। बहुत सी एजेन्सियां अत्यधिक राजनीति में धंस जाती हैं जिसके बिना उनका अस्तित्व ही दांव पर लगा दिखाई देता है। भारत में शायद ही ऐसी कोई एजेन्सी हो जो बिना राजनीतिक शह के अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हो। यह स्वैच्छिक आंदोलन के आधारभूत नियम के विरुद्ध है। इन एजेंसियों को बैसाखियों के सहारे चलने की अपेक्षा अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये।

अधिकांश एजेन्सियाँ आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हैं और न ही उनके पास आवर्ती आय के कोई साधन हैं। आर्थिक निर्भरता तो स्पष्टत: स्वैच्छिक संगठन के मूल सिद्धान्त से विरोधाभास है। यही कारण है कि विकासशील एवं गरीब देशों में इन एजेन्सियों को स्वसहायता, जन सहभागिता तथा कल्याणकारी गतिविधियां अपनाने के लिये राजनीतिक एवं कार्यालयीन सहायता देने के बावजूद भी इनके प्रभावी उदय को सुनिश्चित करने में कठिनाई होती है। प्रशासनिक उदासीनता, बाधाएं तथा सरकार का गैर-स्वागत दृष्टिकोण स्वैच्छिक आंदोलन में एक बड़ी बाधा सिद्ध हुआ है। सामान्यत: नौकरशाही

को यह भय होता है कि स्वैच्छिक आंदोलन के उदय से अतिरिक्त संवैधानिक सत्ता केन्द्र पनपेंगे जिससे उनके प्राधिकारों में कमी आयेगी। प्राय: इस आंदोलन पर आठ तरह के प्रतिबंध दिखाई देते हैं:—

(अ) कार्य करने की इच्छा को सम्बल प्रदान करने में सतत प्रयासों का अभाव।

(ब) कुछ स्वैच्छिक कार्यकर्ता नियमित रोजगार की तलाश में रहते हैं और जब भी उन्हें स्थिर रोजगार मिल जाता है, वे अचानक इन एजेन्सियों को छोड़ देते हैं। इससे कुछ ठोस कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में बाधा पहुंचती है।

(स) उपर्युक्त प्रशिक्षण के अभाव में प्रबन्धकीय अपर्याप्तता तथा अनुभव की कमी।

(द) सरकार तथा कोष प्रदान करने वाली एजेंसियों से सहायता लेने में कठिनाइयां।

(य) कुछ स्वैच्छिक एजेंसियों के निहित स्वार्थ।

(र) लक्ष्य समूहों द्वारा नये विचारों तथा नये लोगों को शंका की दृष्टि से देखना।

(ल) एकरूपता तथा

(व) निरन्तर अनुवर्ती कार्यवाही का अभाव।

कुछ सुझाव: स्वैच्छिक एजेंसियों की प्रत्येक राष्ट्र को आवश्यकता होती है और इन्हें प्रजातंत्र की तरह ही विकसित होना चाहिये। त्वरित ग्रामीण विकास में स्वैच्छिक योजनाओं को बड़ी भूमिका अदा करनी है। ये एजेंसियां गांव स्तरीय लोगों के लिये "आंख एवं कान" हो सकती हैं और ग्रामीण गरीब को पसंद एवं विकल्प प्रदान कर सकती हैं। अत: इस संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि राष्ट्र की सेवा करने हेतु इनको अपना एक बड़ा जाल बिछाना चाहिये। भारत में स्वैच्छिक आंदोलन को मजबूत करने हेतु निम्न महत्त्वपूर्ण कदम उठाने चाहियें।

1. राष्ट्रीय स्तर पर पूर्णकालीन तथा स्वतंत्र मंत्रालय जैसी प्रतिष्ठा रखने वाले राष्ट्रीय स्तर की एक समन्वय एजेन्सी होनी चाहिये। इस समन्वय एजेन्सी को एक ही छत्रछाया के नीचे सहायता, पंजीकरण, मार्गदर्शन तथा दूसरी आधारिक संरचना सुविधाएं प्रदान करने के उत्तरदायित्व का प्रभारी बनाना चाहिये।

2. केन्द्र, राज्यों तथा दूसरे स्थानीय निकायों पर लागू होने वाला एक राष्ट्रीय स्वैच्छिक एजेन्सी अधिनियम भी होना चाहिये। इसमें ऐसे बाध्यकारी अनुच्छेद शामिल करने चाहियें जो इन एजेंसियों की भूमिका, क्षेत्र, जवाबदेही तथा संदर्भ शर्तों को तय करें।

3. इन एजेंसियों पर सरकारी नियंत्रण न होने के कारण वे यह मानकर चलती हैं कि कोई अनियमितता होने पर भी छूट मिल जायेगी। परिणामस्वरूप लक्ष्यों में असफल होने के साथ उन कुछ प्रभावशाली सदस्यों के हाथों में भ्रष्टाचार तथा कोष का दुरुपयोग भी होता है, जिनकी सत्ता के गलियारों में पहुंच है। अत: इससे पहले कि ये एजेंसियां इन दोषों के कारण सरकार व जनता का आकर्षण खोयें, सरकार को चाहिये कि वह इस आंदोलन की जवाबदेही को अविलम्ब सुनिश्चित करे।

4. कार्यक्रमों के पूरा होने तथा एजेंसियों द्वारा अंतिम रूप से घटना स्थल को छोड़ने के बाद भी इन्हें पुराने क्षेत्रों में यदा-कदा अपनी उपस्थिति देनी चाहिये ताकि लोग पुन: इस तथ्य से आश्वस्त हों कि उनकी मित्र एजेन्सी उनका ध्यान रख रही है।

5. इन एजेंसियों को चाहिये कि वह सभी गांववासियों से मित्रों की तरह व्यवहार करें तथा समानता का दृष्टिकोण अपनायें। सहभागिता प्राप्त करने में धैर्य की जरूरत है।

6. लक्ष्य समूह को, उनके दृष्टिकोण, तकनीक तथा क्रियाकलापों में परिवर्तन करने के लिये प्रेरित करना होगा। लोगों को समझाकर कार्य करना एजेन्सी का उद्देश्य होना चाहिये।

7. कोषों की उपलब्धता, उनकी मात्रा, सामयिकता, इन कोषों के वैकल्पिक रणनीतियों के बीच चुनाव करने की क्षमता तथा उन विभिन्न सामाजिक समूहों को जो लाभों के वितरण में हिस्सा चाह रहे हैं, के मध्य संतुलन कायम करना ताकि सही अर्थों में सहभागिता सुनिश्चित हो सके।

8. विकास खंड/जिला/राज्य विशेष से सन्निकटता जतलाने से दूर रहना ही बेहतर है। कई बार जब स्वैच्छिक एजेंसियां गांव में जाती हैं तो इन शक्तियों से सम्बल नहीं मिल पाता। इससे इनकी साख प्रभावित हो सकती है जो अंतत: कार्यकुशलता को भी प्रभावित कर सकती है।

9. इन एजेंसियों को जनसामान्य का विश्वास अर्जित करना चाहिये।

यदि नीति-निर्माताओं द्वारा उपरोक्त संस्तुतियों को मान लिया जाता है तो भारत में अधिकांश स्वैच्छिक एजेंसियों के नकारात्मक विकास को रोका जा सकता है।

प्रबंधक (आयोजना)
बैंक ऑफ बड़ौदा
राजस्थान अंचल, जयपुर

राजस्थान में शिक्षा प्रसार हेतु नवीन योजना "लोक-जुम्बिश"

□ अमरचन्द सिंघल □

शिक्षा समाज का दर्पण है। किसी भी समाज के नागरिक में अनुशासन, कर्त्तव्यनिष्ठा, तथा सचरित्रता बहुत कुछ उसके शिक्षित होने पर निर्भर करती है। राष्ट्र का विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि उस के नागरिक शिक्षित नहीं हों। आर्थिक विकास वस्तुतः शैक्षणिक एवम् सामाजिक विकास पर निर्भर करता है।

भारत शिक्षा के क्षेत्र में विकसित राष्ट्रों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। शिक्षा के व्यापक महत्व को ध्यान में रखते हुए ही संविधान निर्माताओं ने इसे समवर्ती सूची में स्थान दिया है जिससे कि केन्द्र एवं राज्यों के समन्वित प्रयासों से इसके दूरगामी उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव हो सके।

भारत में भी राजस्थान राज्य शिक्षा के क्षेत्र में अन्य राज्यों की तुलना में अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। 1951 की जनगणना के अनुसार राज्य में शिक्षा का प्रतिशत 8.9 था जो कि कम शिक्षा वाले राज्यों में नीचे से दो नम्बर पर था। हालांकि वर्तमान में शिक्षा का प्रतिशत बढ़कर 38 हो गया है लेकिन अन्य राज्यों की तुलना में अभी भी यह बहुत कम है। महिला शिक्षा के मामले में भी यह राज्य सबसे पीछे है। जैसलमेर एवं जालौर जैसे जिलों में तो महिला शिक्षा का प्रतिशत एक से दो तक ही है।

उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए 'सबके लिए शिक्षा' प्रदान करने हेतु राज्य सरकार ने 'लोक-जुम्बिश' योजना का शुभारम्भ किया है।

वित्त व्यवस्था

यह नवीन योजना राजस्थान सरकार द्वारा 30 नवम्बर 1991 को स्वीकृत की गई। इस योजना में सब को साक्षर बनाने के उद्देश्य से 600 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है जिसमें से 50 प्रतिशत, यानि 300 करोड़ रुपये 'स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण' द्वारा एवं 200 करोड़ रुपये केन्द्र सरकार द्वारा प्रदान किये जायेंगे जबकि शेष 100 करोड़ रुपये राज्य सरकार स्वयं वहन करेगी।

प्रथम दो वर्ष के लिए इस पर 20 करोड़ रुपये के व्यय का प्रावधान किया किया है।

प्रशासनिक संरचना एवं कार्य प्रणाली

योजना को शिक्षा विभाग एवं पंचायती राज विभाग के समन्वित प्रयासों से क्रियान्वित किया जायेगा।

सामान्य लोगों को भागीदार बनाने के उद्देश्य से प्रत्येक ग्राम में शिक्षा समितियों का गठन किया जायेगा, जिसमें सरपंच तथा गाँव के अन्य महत्वपूर्ण लोगों को शामिल किया जायेगा। शिक्षा समिति के सदस्य गांव के स्कूलों की कार्य पद्धति में जा सकेंगे तथा समिति के निर्णय व सुझावों को स्कूलों में शामिल किया जा सकेगा ताकि वे योजना के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझें।

इसी तरह विकास खण्ड स्तर पर पंचायत समिति की स्थाई समिति से भी इस योजना को जोड़ा जायेगा। समिति स्तर पर पहले सर्वे का काम किया जायेगा, जिसमें गांव व ब्लॉक स्तर पर बनाये जाने वाले संचालक ग्रुप में जुड़े लोगों के सुझाव लिये जायेंगे और इसी आधार पर योजना में पैसे स्वीकृत होंगे।

नीतिगत निर्णयों, पंचायत समितियों से करार करने व धन स्वीकार करने के लिए राज्य सरकार द्वारा उच्चाधिकार प्राप्त अभिकरण का गठन किया जायेगा जिसके अध्यक्ष मुख्यमंत्री तथा उपाध्यक्ष राज्य के शिक्षा मंत्री होंगे। शिक्षा सचिव की अध्यक्षता में दिन-प्रति दिन का काम निपटाने के लिए कार्यकारी परिषद का गठन किया जायेगा।

उद्देश्य एवं लक्ष्य

योजना का प्रमुख उद्देश्य तो इक्कीसवीं सदी से पहले सभी को शिक्षित करने का है। लेकिन इसके अन्य उद्देश्य भी हैं यथा-गरीबी उन्मूलन, महिला विकास, नारू उन्मूलन।

प्रथम दो वर्ष में पायलट योजना के रूप में इस परियोजना को 25 विकास खण्डों में लागू किया जा रहा है। परीक्षण के तौर पर पांच विकास खण्डों-अराई व पीसांगन (अजमेर) लूणकरणसर (बीकानेर), किशनगंज (बारां) व गढ़ी केसवाड़ा पंचायत समितियों को चुना गया है।

योजना की क्रियान्विति के प्रथम चयनित 25 विकास खण्डों में अगले दो वर्षों में 125 अतिरिक्त प्राथमिक विद्यालय, 50 उच्च प्राथमिक विद्यालय, 5000 अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र तथा 1000

पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्रों (बालालय) की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में जिन विद्यालयों में अध्यापकों की कमी है उनकी माइक्रो प्लानिंग के आधार पर स्कूल मैपिंग कर के 250 अतिरिक्त अध्यापकों की व्यवस्था का प्रावधान है।

बालिकाओं को प्रोत्साहन देने के लिए तीन पंचायत समितियां में प्रयोग के रूप में प्रति पंचायत समिति में लगभग 10500 बालिकाओं को मुफ्त पोशाक एवं 22500 बालक-बालिकाओं को निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए दो वर्षों में 75 प्रशिक्षण केन्द्र, 25 पंचायत समितियों में स्थापित किये जाने का लक्ष्य रखा गया है।

निष्कर्ष

शिक्षा के क्षेत्र में यह एक क्रांतिकारी कार्यक्रम है। योजना का विकेन्द्रीकरण कर जन साधारण को सम्मिलित करना निश्चय ही स्वागत योग्य कदम है। इस से भ्रष्टाचार पर अंकुश तो लगेगा ही साथ ही प्रशासन की कार्य क्षमता में वृद्धि हो सकेगी। लेकिन योजना चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न हो जब तक उसे क्रियान्वित करने वाला प्रशासनिक संगठन कार्यकुशल नहीं होगा तब तक वह अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकती। अभी इस योजना की सफलता-असफलता भविष्य के गर्भ में समाहित है। किसी भी कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहां तक सफल रहा है। अतः सफलता, असफलता का आंकलन तो इसकी कार्य निष्पत्ति के आधार पर ही सम्भव हो सकेगा।

यदि यह योजना अपने लक्ष्यों की प्राप्ति पूर्णरूप से करने में सफल हो जाती है तो यह प्रयास न केवल राजस्थान अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये बहुत ही हितकर होगा तथा राज्य में विकास की प्रक्रिया में नवीन आयाम स्थापित हो सकेंगे।

लोक प्रशासन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर 302004

"ग्राम पतोरा करेगा शिक्षा का उजियारा"

सफलता की कहानी

कांकेर (जिला बस्तर) विकास खंड पारस गांव में स्थित आदिवासी बाहुल ग्राम पतोरा जो कि विकास खंड पारसगांव से 3 कि.मी. दूरी पर पश्चिम दिशा में स्थित है। ग्रामीण की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने कारण स्कूली बच्चे अपनी पुस्तक नहीं खरीद पाते थे, जिसके कारण बच्चों की स्कूली शिक्षा नहीं पूरी हो पाती थी। इस ग्राम से साक्षरता की ज्योति जलाने का प्रयास 'बस्तर जनसेवा प्रतिष्ठान' स्वयं सेवी संस्था के संचालक श्री डी.एस. शिर्के के द्वारा शुरू किया गया। श्री शिर्के ने इस आदिवासी ग्राम में शिक्षा की आवश्यकता को महसूस करते हुये ग्रामीणों को इस वास्ते मानसिक रूप से तैयार किया तथा ग्राम में सामूहिक पुस्तकालय की स्थापना हेतु अपने प्रयास शुरू किये। पुस्तकालय की स्थापना हेतु श्री शिर्के ने प्रति घर से रु० 5.00 (रुपये पांच) जमा करने का सुझाव रखा। ग्रामीणों ने इस सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। ग्राम सरपंच श्री दशुराव नेताम एवं ग्राम पटेल श्री लक्षमण नेताम के प्रयास से दिनांक 26 जनवरी 1992 को गणतंत्र दिवस के दिन लगभग रु० 250 (रुपये दो सौ पचास) की पुस्तकें खरीदकर ग्रामीण पुस्तकालय की शुरूआत की।

इस पुस्तकालय में कक्षा पहली से कक्षा 12 वीं तक की पुस्तकें निशुल्क विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध कराई गईं एवं ग्रामीणों में चेतना लाने बाबत अखबार एवं दूसरी पत्रिकाएं मंगाने की योजना को मूर्त रूप दिया जा रहा है। ग्राम पतोरा के ग्रामीणों से जब इस पुस्तकालय की उपयोगिता बाबत चर्चा हुई तो ग्रामीणों ने बताया कि शिक्षा के प्रसार से अपने ग्राम में ही नहीं वरन इस क्षेत्र के समस्त ग्रामवासियों के लिये आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के नये रास्ते खुलेंगे। आज 26 जनवरी 1992 के दिन मुझे पूज्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के कहे हुये शब्द याद आ रहे हैं "जब तक हमारे समाज का सबसे छोटा आदमी तरक्की नहीं करता तब तक हमारी आजादी अधूरी है।" शिक्षा के प्रसार से हर जरूरतमंद तक शिक्षा की रोशनी पहुंचे तभी तरक्की संभव है।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी
कांकेर (म०प्र०)

प्रौद्योगिकी विकास एवं भारतीय ग्रामीण परिवेश

□ डॉ० एन०एल० मिश्र □

सरकार गांवों के विकास के लिए एवं बेरोजगारी दूर करने के लिए तरह-तरह की योजना चला रही है परन्तु इसका उद्देश्य गांवों को शहर बनाना नहीं है, अपितु गांव की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक स्थिति को मजबूत करना है। यदि सरकार गांवों को शहर का प्रारूप देने लगे तो स्थिति बिल्कुल विषम हो जायेगी और लोग गांवों की तरफ दौड़ना शुरू कर देंगे। एक युग था कि लोगों के पास भूमि होती थी और लोग कृषि योग्य भूमि पर कृषि कार्य सम्पादित करते थे परन्तु इस जनसंख्या के त्वरित गति से बढ़ने के साथ-साथ उसी अनुपात में भूमि भी लोगों के पास घटती जा रही है और वह दिन दूर नहीं जब भूमि बिल्कुल ही संकुचित हो जायेगी तथा लोग अपने सोने के लिए जगह टटोलेंगे। तथापि भारतीय सरकार इन टुकड़ों वाली जमीन को अत्यधिक उपजाऊ बनाने हेतु प्रशंसनीय प्रयास कर रही है। नये-नये बीजों का आविष्कार हो रहा है। नई-नई तकनीक विकसित की जा रही है ताकि लोगों का आर्थिक, सामाजिक स्तर सुधर सके। प्रश्न यहाँ यह उठता है कि क्या सरकार जो प्रयास कर रही है और जिसके लिए कर रही है, क्या वे लोग उस बारे में कुछ जिज्ञासा रखते हैं या नहीं ? अन्यथा सरकार के प्रयास का परिणाम उन लोगों तक पहुंचते-पहुंचते महत्वहीन हो जायेगा और लोग उसका लाभ सही समय पर नहीं ले पायेंगे। इस सन्दर्भ में एक अध्ययन मध्य-प्रदेश के कुछ गांवों में किया गया और यह पाया गया कि विकसित गांवों के लोग अविकसित गांवों की तुलना में कम जागरुक थे तथा उनकी प्रौद्योगिकी के बारे में अत्यन्त कम जानकारी भी थी।

इस सन्दर्भ में एक मुख्य पहलू यह है कि जागरुकता लोगों में कैसे विकसित की जाये ? क्योंकि भारतवर्ष में शिक्षा की स्थिति भी विषम है। किसी प्रदेश में शिक्षा 100 प्रतिशत है तो कहीं बिल्कुल कम। अतः शिक्षा का यह उच्चावच निश्चित रूप से लोगों की जागरुकता को प्रभावित करता है। जो लोग पढ़े-लिखे हैं, उनका सम्पर्क पत्र-पत्रिकाओं से तो हो सकता है परन्तु जो अनपढ़ हैं उन लोगों तक प्रौद्योगिकी जानकारी हम रेडियो, दूरदर्शन से या सरकारी कर्मचारियों जैसे बी०डी०ओ०, ग्राम विकास अधिकारी, ग्राम-सेवक या ग्राम-प्रधान या इस तरह के अन्य स्रोतों से ही पहुंचा सकते हैं। सबसे ज्यादा प्रभाव आजकल दूरदर्शन का पड़ रहा है परन्तु उसमें कठिनाई यह है कि इनको प्राप्त कैसे किया जाय ? क्योंकि इनमें दो बातें प्रमुखतया अपना स्पष्ट प्रभाव डालती हैं। प्रथमतः पूंजी तथा दूसरा गांवों तक विद्युत की निरन्तर सप्लाई। इस दिशा में सरकारी प्रयास सराहनीय है कि विद्युत व्यवस्था तो गांवों तक पहुंचा दी गयी है एवं पहुंच भी रही है परन्तु दूरदर्शन की क्रय शक्ति सबमें एक समान नहीं है। अतः सरकार को इस दिशा में कुछ उदारवादी नीति अपनानी होगी ताकि यह मीडिया सब तक आसानी से पहुंच सके और लोग इसका लाभ उठा सकें। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह पाया गया है कि यह आवश्यक नहीं कि जो लोग प्रौद्योगिकी प्रभाव के प्रति जागरुक हैं उनमें उनको अपनाने की भावना भी प्रबल हो क्योंकि हो सकता है कि एक व्यक्ति यह जानता है कि हार्वेस्टर कृषि कार्य को आसान बना देता है और यह कृषि कार्य में मदद करता है लेकिन दूसरी तरफ वह उसको अपनाने में अरुचि प्रदर्शित करता है। यहीं पर एक व्यक्ति की उपलब्धि अभिप्रेरणा, जोखिम मोल लेने की प्रवृत्ति, बदलाव को स्वीकार करने की प्रवृत्ति प्रबल होती है और ये प्रवृत्तियां जिनमें जितनी ही प्रबल होती है व्यक्ति उतना ही उससे प्रभावित होता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर दुर्गानन्द सिन्हा (1983) ने अपने अध्ययन में पाया कि गांव के लोगों में अभिप्रेरणा बहुत ही कम होती है। इस परिणाम की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही है कि कम प्रेरित व्यक्ति विकास को नजरअंदाज कर सकता है। जो निश्चित रूप से विकास की गति में बाधक है। हालांकि डॉ० पी०एस०एन० तिवारी (1986) अपने ग्रामीण अध्ययन के आधार पर यह बताते हैं कि विकसित गांव के लोगों में जोखिम उठाने की प्रवृत्ति ज्यादा पाई गई और अविकसित गांव में यह प्रवृत्ति कम पाई गई। उन्होंने अपने परिणामों की व्याख्या इस आधार पर की कि यह जोखिम उठाने की प्रवृत्ति ही उनकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति को उठाने में सहायक रही और निरन्तर उन्नति के लिए सहायक हो रही है।

कुछ परम्परावादी लोग जो आज भी अपनी रुढ़िवादी परम्पराओं को ढो रहे हैं, बदलाव के स्वरूप को स्वीकारने में

हिचकिचाते हैं। अतः बदलाव सही दिशा में अपनी सार्थकता खोता जा रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि आज भी अधिकांश परिवारों के मुखिया वही हैं जो अपने जीवन का उत्तरार्द्ध जीवन व्यतीत कर रहे हैं तथा नये लोग शहरों की तरफ दौड़ रहे है। परिणाम स्वरूप परिवार में बदलाव केवल नाम मात्र के लिए हो रहा है। बल इस बात पर होना चाहिए कि कुछ उदारवादी नीतियों का सृजन किया जाय, जिससे आज का दिग्भ्रमित युवक कृषि को एक व्यवसाय का रूप दे सके और वह अपने व्यवसाय से संतुष्ट हो सके। पैदावार को उचित मूल्य मिल सके तथा देश के विकास में वह अपना समुचित यैागदान दे सके। स्वतः अपने ही अध्ययन के दौरान हमने यह पाया कि जिन परिवारों की बागडोर युवा पीढ़ी के हाथों में है तथा वहां थोड़ा बहुत भी सरकारी प्रयास पहुंचा है तो वहां के युवकों में कृषि के प्रति रुचि बढ़ी है तथा वे बदलाव के स्वरुप को स्वीकार कर रहे हैं तथा बदलाव चाह रहे हैं। दूसरी तरफ जहाँ परिवार की बागडोर अब भी परम्परावादी लोगों के हाथ में है वहां पर यह पाया गया कि नयी-नयी तकनीकों का प्रयोग मानव जीवन पर प्रश्न-चिन्ह लगा रहा है। लोग आये दिन तरह-तरह की बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। कृषि योग्य भूमि ऊसर होती जा रही है। परिणामतः इसका प्रभाव देश के किसी खास भाग में सीमित न रहकर समूचे भू-भाग को अपने चपेट में ले सकता है।

सरकार की नीतियाँ निश्चित ही निरन्तर सुधारवादी दृष्टिकोण की तरफ तेजी से बढ़ रही हैं। आज भी सरकार कृषि को सर्वाधिक महत्व दे रही है और पूरे खर्च का लगभग आधा हिस्सा इन मदों में व्यय कर रही है। इस स्थिति में किसानों को इसका अधिकाधिक लाभ लेना चाहिए और बदलते हुए परिवेश को अपनाना चाहिए। जो किसान सच्ची लगन से अपने कर्त्तव्यपथ पर अडिग हैं तथा इनका अधिकाधिक मात्रा में उपयोग कर रहे हैं, उनको सरकार समय-समय पर पुरस्कृत करती है तथा उनके मनोबल को बढ़ाती है।

मात्र कृषि की पैदावार बढ़ाकर ही हम ग्रामीण व्यवस्था को गति प्रदान नहीं कर सकते अपितु उस समुदाय में रहने वाले लोगों की शैक्षिक स्थिति को संतुलित करके, उनके स्वास्थ्य को ठीक रखकर के ही हम आगे बढ़ सकते हैं। वहाँ छोटी-छोटी मशीनों के प्रयोग को उद्योग के रूप में बदलकर आगे बढ़ सकते हैं। शारीरिक थकान को दूर करने के लिए भरपूर मनोरंजन के साधन को विकसित करने की जरुरत है। इस दिशा में भी सतत् प्रयास किये जा रहे हैं क्योंकि अब दूरदर्शन एवं रेडियो का प्रसार गांवों तक आसानी से पहुंच रहा है। आसान किस्तों पर मैदा-मिल, तिलहन मशीन, राईस मशीन, क्रेशर इत्यादि की व्यवस्था की गई है। जगह-जगह पर नये नये स्कूल और व्यावसायिक पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं ताकि ग्रामीण बच्चे अपनी शिक्षा पूरी कर सकें। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की व्यवस्था की गई है, जिससे लोगों को अपने उपचार की सुविधा सुलभ हो सके। नयी-नयी तकनीकों से हमें क्या लाभ हैं, अपितु हम इस होड़ में इतना आगे निकल गये हैं जहां से पीछे देखना सम्भव नहीं है क्योंकि प्रौद्योगिकी विकास हर रोज अपने नये आयाम को छूती जा रही है। इतना होने के बावजूद इसको अपनाने में मुख्य रूप से एक प्रबल समस्या सामने आती है कि "उपयुक्त तकनीक" क्या है ? जो हमारे "एन्डोजेनस" मॉडल से मेल खाता हो, "कैच-अप मॉडल से नहीं।

प्राप्त परिणाम और निजी अनुभव इस बात को इंगित करता है कि सरकारी सोच निरन्तर आगे की तरफ अग्रसारित हो रहा है और सर्वांगीण विकास हेतु संसाधनों का जाल बिछाता जा रहा है जिससे देश को समृद्ध बनाया जा सके जो पूरे विश्व के लिए एक मिसाल हो परन्तु उसी दिशा में हमारा नजरिया होना चाहिए जो इस प्रयास तथा प्रयोग के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर सके। इस दिशा में व्यक्ति की भूमिका तब और बढ़ जाती है जब सुविधा प्रदान करने वाला सुविधा दे रहा है परन्तु पाने वाला पा नहीं रहा है। उस स्थिति में व्यक्ति को अपने "स्व" के आत्म निरीक्षण की जरुरत है तथा उसमें परिवर्तन लाने की जरुरत है, ताकि सरकारी प्रयास अपने लक्ष्य में खरा उतर सके तथा व्यक्ति को अपनी स्थिति मजबूत करने का मौका मिल सके।

मनोविज्ञान विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/92
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

18/6/92

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/92
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित